'बेंगलोर' प्रवचन-मोती

प्रवचनकार

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

'बेंगलोर' प्रवचन-मोती

❀ प्रवचनकार ❀

जिनशासन के अजोड़ प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय *रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराज* के तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान् योगी, नवकार महामंत्र के अजोड़ साधक नि:स्पृह शिरोमणि, पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न, मरुधररत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

-: अवतरण :-

पूज्य मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.

225

-: प्रकाशक :-

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 140/- रुपये • **प्रतियां :** 1000
विमोचन स्थल : संभवनाथ जैन मंदिर, कराड, (M.S.)
विमोचन तिथि : माघ शुक्ला-13, वि.सं. 2078, दि. 14-2-2022

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**श्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तक को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होंगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.
M. 9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. Cell : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

मरुधररत्न **पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के संयम जीवन के 46 वें वर्ष में मंगल प्रवेश के पावन प्रसंग पर पूज्यश्री द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित 225 वीं पुस्तक **'बेंगलोर' प्रवचन-मोती** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

बीसवीं सदी के महानयोगी, नमस्कार महामंत्र के बेजोड़ साधक, चिंतक एवं अनुप्रेक्षक पूज्यपाद भावाचार्य तुल्य **पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** का संयम जीवन के 40 वर्षों तक अधिकांश विचरण राजस्थान–गुजरात व महाराष्ट्र में रहा ।

❀ इन 40 वर्षों में पूज्यश्री ने **नौ** चातुर्मास राजस्थान में किए । नौ वर्षों में राजस्थान के सिरोही, पाली, जालोर, जोधपूर, बाडमेर, जैसलमेर, जयपूर, नागोर, अजमेर, उदयपूर, डुंगरपूर व राजसमंद आदि 12 जिलों में विचरण रहा । चातुर्मास का लाभ बाली (दो बार) पाली (दो बार) पिंडवाडा, रानीगांव, उथमण, उदयपूर तथा घाणेराव संघ को प्राप्त हुआ !

❀ गुजरात प्रांत में पूज्यश्री के **ग्यारह** चातुर्मास हुए । उनमें पांच चातुर्मास पाटण (उ.गु.), दो चातुर्मास पालीताणा, दो चातुर्मास अहमदाबाद में (ज्ञान मंदिर एवं गिरधरनगर) एवं एक चातुर्मास सुरेन्द्रनगर व एक चातुर्मास जामनगर में हुआ ।

❀ महाराष्ट्र प्रांत में पूज्यश्री के **19** चातुर्मास हुए । उनमें मुंबई जिले में दादर, सायन, श्रीपाल नगर-वालकेश्वर तथा दीपकज्योति टॉवर में कुल चार चातुर्मास, थाणा जिले में– दो कल्याण, दो भायंदर, दो भिवंडी तथा एक थाणा में 7 चातुर्मास, पूना जिले में टिंबर मार्केट-पूना, येरवडा तथा चिंचवड स्टेशन में कुल 3 चातुर्मास दो चातुर्मास कोंकण में–कर्जत एवं रोहा (रायगढ) तथा 1 चातुर्मास धूले, एक चातुर्मास कराड तथा एक चातुर्मास नासिक में कर सुंदर धर्म प्रभावना की ।

❀ मध्यप्रदेश में पूज्यश्री का **एक** चातुर्मास रतलाम में हुआ ।

दक्षिण भारत में आगमन

अपने संयम जीवन के 40 वर्षों के बाद पूज्यश्री ने दक्षिण भारत के अनेक पुण्यवंत महानुभावों की हार्दिक विनती का स्वीकार कर दक्षिण भारत की ओर अपनी विहार यात्रा प्रारंभ की और उसमें सर्व प्रथम वि.सं. 2073 ईस्वी सन् 2017

में चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ–श्री सीमंधर–शांतिसूरि जैन ट्रस्ट वी.वी.पुरम् बेंगलोर को !

–बेंगलोर में सर्वप्रथम पूज्यश्री के नगर-प्रवेश का सौभाग्य गोडवाड भवन ट्रस्ट को प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् पूज्यश्री का लगभग 13 मास तक बेंगलोर के विविध संघों में विचरण रहा ।

इस विचरण दरम्यान चातुर्मासिक आराधनाओं के साथ अनेक संघों में पूज्यश्री की निश्रा में अनेकविध अनुष्ठान संपन्न हुए ।

❀ चातुर्मास प्रवेश बाद श्री सीमंधरशांतिसूरि ट्रस्ट के अन्तर्गत महावीर भवन में मुमुक्षु दीपिका अशोकभाई भंसाली (तिखी राज.निवासी) की भागवती दीक्षा संपन्न हुई ।

❀ चातुर्मास दरम्यान समस्त बेंगलोर संघ में सामूहिक सिद्धितप का आयोजन हुआ ।

❀ सुशीलधाम में पूज्यश्री की तारक निश्रा में श्री सीमंधर शांतिसूरि जैन ट्रस्ट–वी.वी.पुरम् के तत्वावधान में शा. पुष्पराजजी राजकुमारजी कोठारी (आउवा निवासी) की ओर से खूब उदारता व शासन प्रभावना पूर्वक भव्य उपधान तप का आयोजन हुआ ।

❀ पूज्य आचार्यश्री की हिन्दी भाषा में आलेखित 200 वीं पुस्तक के भव्य विमोचन समारोह पर गोडवाड भवन में चार दिन का भव्य ऐतिहासिक महोत्सव सानंद संपन्न हुआ ।

❀ चैत्र मास की सामुदायिक नवपद ओली का भव्य आयोजन गोडवाड भवन में आवास–निवास की सुंदर व्यवस्था के साथ संपन्न हुआ ।

13 मास की स्थिरता दरम्यान जो भी पूज्यश्री के प्रेरणादायी प्रभावक प्रवचन हुए, उन सबका सार–संक्षेप पू.मु.श्री स्थूलभद्रविजयजी म. अवतरित करते थे जो नियमित रुप से सुप्रसिद्ध दैनिक **'राजस्थान–पत्रिका'** एवं **'दक्षिण भारत'** में छपते थे ।

ये प्रवचन दि. 10 मई 2017 से 21 मई 2018 के बीच बेंगलोर के विविध संघों में स्थिरता दरम्यान दिए गए है ।

उन्हीं प्रवचनों के सार संक्षेप को संस्कारित करके पुस्तक के रुप में प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

भिन्न भिन्न विषयों पर दिए गए प्रवचनों के ये बिंदु हमारी सोई हुई चेतना को जागृत करने के लिए घंटनाद का काम करते है ।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि ये प्रवचन मोती पाठकों को अवश्य पसंद पडेंगें ।

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्मतिथि	: भादों सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षादाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षादिवस	: माघ शुक्ला 13, विक्रम संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षादिवस विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 से अधिक दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, वि.संवत् 2033, दि.1-3-1977
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषाबोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन :** फागुन सुदी 14, विक्रम संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली, विक्रम संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर (दो बार), पालीताणा (दो बार), नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बतूर ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक, तामिलनाडु आदि

◆ **पाद विहार :** आज तक लगभग 43,000 K.M.

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय-गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, बेंगलोर से सुशीलधाम, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन : वात्सल्य के महासागर** संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 225

◆ **संस्कृत साहित्य संपादन-सह संपादन :** सिद्ध हैमशब्दानुशासनम्-बृहद्वृत्ति लघु न्यास सह, पांडवचरित्र आदि

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी, मुनि केवलरत्नविजयजी, स्व.मुनि कीर्तिरत्नविजयजी, मुनि प्रशांतरत्नविजयजी, मुनि शालिभद्रविजयजी, मुनि स्थूलभद्रविजयजी, स्व. मुनि यशोभद्रविजयजी । मुनि विमलपुण्यविजयजी म.सा.**

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव) नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना ।

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई ।

◆ **आचार्य पदवी :** पौष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

1 शरीर से भी ज्यादा कीमती है 'आत्मा'

'शरीर से भी ज्यादा कीमती है–'आत्मा' ।

बस में चाहे कितने ही यात्री क्यों न हों, उसे चलानेवाला ड्राइवर न हो तो वह बस आगे नहीं बढ़ सकती है, उसी तरह शरीर रूपी बस में इन्द्रियाँ यात्री हैं, जबकि आत्मा ड्राइवर है । जैसे ड्राइवर के बिना बस किसी काम की नहीं, वैसे ही आत्मा के बिना शरीर कोई काम का नहीं है ।

फिर भी शरीर को सँभालने के लिए हम सभी प्रयत्न करते हैं, और आत्मा को सँभालना भूल जाते हैं ।

शरीर के सुख–साधनों में हम पूरा दिन बिता देते हैं, और भूल जाते हैं कि इन सभी सुख के साधनों को छोड़कर हमें परलोक में जाना है । संग्रह किया एक भी साधन साथ में नहीं चलेगा, परंतु इस संग्रह हेतु किया पाप, आत्मा के साथ आएगा ।

टेक्स की चोरी में पकड़े जाने पर रिश्वत देकर उस अफसर अधिकारी को खरीद सकते हैं, परंतु किये हुए पापों की सजा देनेवाली कर्मसत्ता को रिश्वत से नहीं खरीद सकते ।

अपने जीवन के साथ देह व आत्मा का सह अस्तित्व है । आत्मा के आधार पर ही अपने जीवन का अस्तित्व होने पर भी हम आत्मा को भूल जाते हैं और नाशवंत शरीर के सौंदर्य के पीछे पागल बन जाते हैं ।

जब तक आत्मा के शाश्वत सौंदर्य का ज्ञान न हो, तब तक देह के क्षणिक सौन्दर्य के पीछे पागल बनें, यह उसकी अज्ञानता है, परंतु आत्मा के शाश्वत सौन्दर्य और शरीर के क्षणिक सौन्दर्य को जानने-समझने के बाद भी हमारी दौड़ यदि उन्हीं क्षण-सुंदर और नाशवंत पदार्थों के प्रति रहे, तो इसमें हमारी बुद्धिमत्ता नहीं है ।

2 'आत्महत्या' दुःख नाश का उपाय नहीं है

पुण्य के उदय से प्राप्त सुख में भी सावधानी जरूरी है। जैसे अग्नि, चाकू, छुरी आदि का उपयोग करते समय आप सावधान रहते हैं, छोटी–सी असावधानी भी बड़ा नुकसान कर देती है। वैसे ही सुख के उपभोग में सावधान न रहें, तो क्षण भर के सुख से हम असंख्य भवों तक नरक और तिर्यंच के दुःख सहन करने में मजबूर बन जाते हैं।

मौज–शौक के सुख नये पापकर्मों का बंध करवाते हैं, जिससे अगले जन्म में खूब दुःख सहन करने होंगे। इसलिए पुण्य से प्राप्त सुख में खूब सावधान रहना जरूरी है।

प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, मरना कोई नहीं चाहता है। केंन्सर आदि के रोगों से पीड़ित व्यक्ति मरना चाहता है, परंतु एक मात्र दुःखमुक्ति के लिए। दुःख जब सहन न हो, तब व्यक्ति आत्महत्या करना चाहता है, उसके लिए विषभक्षण, फाँसी, पानी में छलांग आदि उपायों को अजमाता है। परंतु आत्महत्या दुःखनाश करने का सही उपाय नहीं है।

हत्या से भी आत्महत्या बड़ा पाप है। हत्या करने में तो क्रोध चाहिए परंतु आत्महत्या में तो क्रोध के साथ निष्ठुरता और क्रूरता भी चाहिए, जो बड़े पापबंध का कारण है।

दुःखमुक्ति की इच्छा से आत्महत्या करनेवाले अज्ञानी जीव यही मानता है कि दुःख शरीर से जुड़ा है, और शरीर के नाश से दुःख का नाश हो जाएगा, परंतु सत्य तो यह है कि दुःख का संबंध शरीर से नहीं कर्मों से है।

इस जन्म के शरीर को छोड़ने के लिए आत्महत्या करनेवाले को अनेक भवों में मरणांत कष्ट सहन करने पडते है अतः आत्महत्या दुःखनाश का उपाय नहीं है। दुःखनाश का उपाय एक मात्र कर्म का क्षय है। जो समता भाव से दुःख सहन करता है, वही कर्मों से मुक्त हो सकता है।

3 भाव-शुद्धि की प्रधानता

कसाई से भी भयंकर कषाय हैं । कसाई तो एक ही जीवन का अन्त लाता है जबकि ये कषाय अनेक जन्मों का अन्त लानेवाले हैं । कसाई पशु के द्रव्य–प्राणों का नाश करता है, जबकि ये कषाय आत्मा के भावप्राणों का नाश करते हैं ।

नदी के पानी का कभी विश्वास मत करना, क्योंकि पानी के वेग में कभी भी वृद्धि हो सकती है । आग की एक छोटी–सी चिनगारी की भी उपेक्षा मत करना, क्योंकि दिखने में छोटी–सी चिनगारी चन्द क्षणों में भयंकर दावानल का रूप ले सकती है और भयंकर विनाश भी ला सकती है ।

जैनशासन में क्रिया प्रधान नहीं है, परन्तु क्रिया के पीछे रहा आशय प्रधान है, अतः धार्मिक अनुष्ठान भी मलिन आशय से किया जाय है तो वह आत्मा के लिए लाभकारी बनने के बजाय संसारवर्धक बन जाता है, अतः धार्मिक अनुष्ठानों में आशय–शुद्धि की ओर अपना पूरा–पूरा लक्ष्य होना चाहिए ।

अनुष्ठान के 5 प्रकार हैं:– विष अनुष्ठान, गरल अनुष्ठान, अननुष्ठान, तद्हेतु अनुष्ठान, अमृत अनुष्ठान, इन पाँच प्रकार के अनुष्ठानों में प्रथम तीन प्रकार के अनुष्ठान त्याज्य हैं, क्योंकि वे संसारवर्धक हैं, जबकि अंतिम दो अनुष्ठान ही मोक्षसाधक होने के कारण अत्यंत आदरणीय हैं ।

अशुभभाव को छोड़कर सदा धरो शुभ भाव ।
शुद्धभाव आदर्श हों, यह आगम का भाव ।।

मृगतृष्णा के जलपान से तृप्ति नहीं होती है

'पंचसूत्र' में कहा गया है–संयोग वियोग का कारण है । परन्तु जीवात्मा ने इस सत्य को स्वीकार नहीं किया, बल्कि इस संसार में जो–जो संयोग मिले, उन्हें शाश्वत मानकर उनके राग में आसक्त बन गया ।

धन का संयोग हुआ, उससे राग किया, उसमें आसक्त बना । पुत्र–परिवार आदि मिले, उनमें आसक्त बना । इसके साथ ही आश्चर्य तो यह है कि जीवात्मा धन के अभाव को सहन कर लेगा, किन्तु प्राप्ति के बाद उसके वियोग को सहन करने में समर्थ नहीं होता है । धन के अभाव में कठिनाई से जीवन निर्वाह कर लेगा । किन्तु करोड़पति बनने के बाद रोड़पति (भिखारी) बनना उसे स्वीकार नहीं है । इस प्रकार प्रत्येक संयोग की आसक्ति के कारण जीवात्मा ने भयंकर पापकर्मों का ही आस्रव किया है ।

अतः हे आत्मन् ! जिनका अवश्य वियोग होनेवाला है, उनका पहले से ही त्याग कर दे और अपने आत्मस्वरूप के साथ एकाग्रता धारण कर ।

मृगतृष्णा के जल पान से तृप्ति होने वाली नहीं है ।

ग्रीष्म ऋतु में जब हवा गर्म हो जाती है तब रेगिस्तान में दूर से ऐसा प्रतीत होता है मानों पानी का प्रवाह बह रहा हो । परन्तु वह तो मृगमरीचिका है । वह एक मात्र भ्रम है । वहाँ जाने से जल की एक बूँद भी मिलनेवाली नहीं है । बेचारा मृग । उस मृगतृष्णा में जल की कल्पना कर भागता है, दौड़ता है । परन्तु अन्त में उसे निराश ही होना पड़ता है ।

5 ममत्व ही बंधन है

पुण्य के उदय से जीवात्मा को धन और समृद्धि की प्राप्ति होती है । उस वैभव और विलासपूर्ण जीवन में आत्मा यह भूल जाती है कि उसे प्राप्त हुई यह समृद्धि क्षणभंगुर और नश्वर है । मदिरापान के बाद जैसे शराबी अपने वास्तविक व्यक्तित्व को भूल जाता है, उसी प्रकार थोड़ीसी सम्पत्ति में आत्मा इतनी रम जाती है कि उसे इस जीवन की वास्तविकता का भान ही नहीं रहता है ।

मानव अपने क्षणिक वैभव और बाह्य परिवार को शाश्वत मान बैठता है । अनेक जीवों को मरते देखकर भी उसे अपनी मृत्यु का विचार नहीं आता है । इस जीवन की अमरता की भ्रांति में वह रात–दिन धन–वैभव के संग्रह हेतु प्रयत्नशील रहता है । धन–प्राप्ति तथा संग्रह की तीव्र लालसा में न्याय नीति को भूल जाता है और अन्याय और अनीति का गुलाम बन जाता है ।

पहले धन की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ, फिर उसके संरक्षण की चिन्ता, प्राप्त धन को कोई लूट न ले...कोई चोर चोरी न कर ले...इत्यादि चिंताओं में वह सतत ग्रस्त रहता है और फिर उस धन को देखकर मोह पाता है ।

धन के साथ ही उसका तीव्र मोह होता है परिवार पर । पत्नी के सुख–दुःख की चिन्ता...तो कभी पुत्र-पुत्री के सुख–दुःख की चिन्ता ।

कुटुम्ब के ममत्व के बन्धन से जकड़ा हुआ होने के कारण वह सतत चिंतातुर रहता है । चिंता से ग्रस्त आत्मा को आत्मचिन्तन के लिए अवकाश ही कहाँ रहता है !

6 कषायों को अच्छा मानने वाले को सच्चा सुख नहीं मिल सकता

सच्चे सुख को पाने के लिए संसार का नाश जरूरी है, और संसार का नाश करने के लिए क्रोधादि कषायों का नाश जरूरी है। जो व्यक्ति क्रोधादि कषायों को अच्छा मानता है, कषाय लाभकारी हैं और कषाय करने जैसा है–ऐसा मानता है उसको सच्चे सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है।

विषय और कषाय से हमें जो सुख प्राप्त होता है, वह सच्चा सुख नहीं है, परंतु सुखों का आभास है। हमें सभी वस्तुएँ असली चाहिए परंतु सुख तो नकली ही पसंद करते हैं।

जिस प्रकार मिट्टी के लेपवाली लकडी, पानी में डाली जाय तो वह डूब जाती है। जैसे–जैसे उस लकड़ी पर से मिट्टी का लेप उतरता जाता हैं, वैसे–वैसे वह लकड़ी ऊपर आती जाती है। संपूर्ण लेप उतर जाने के बाद वह लकड़ी पानी की सतह पर तैरती है।

जैसे लकड़ी का स्वभाव पानी के ऊपर तैरना है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव ऊपर उठना है परंतु जैसे मिट्टी के लेप से लकड़ी पानी में डूब जाती है वैसे ही कर्मों के बंधन से बँधी आत्मा को नरक और स्वर्ग में जाना पड़ता है। जैसे ही आत्मा कर्मों के लेप से मुक्त होती है, वैसे ही सात राजलोक ऊपर रही सिद्धशिला पर स्थिर हो जाती है।

उसके ऊपर आत्मा को गति करने के लिए सहायक धर्मास्तिकाय न होने से आत्मा वहीं स्थिर हो जाती है। वहां आत्मा को अनंत काल तक अनंत सुख एवं अनंत ज्ञान का आनंद सदा काल के लिए होता है।

7 खतरनाक दोष है- 'परनिन्दा'

अध्यात्म के विकास के लिए सर्वप्रथम महा अनर्थकारी दोषों का त्याग जरुरी है । जब तक हमारी आत्मा संसार में है, तब तक छोटे-मोटे दोष रहेंगे ही । परंतु अपना लक्ष्य सर्वदोषों से मुक्त बनने का होना चाहिए । मानवजीवन का लक्ष्य अध्यात्म साधना के द्वारा सर्वगुणों की प्राप्ति होना चाहिए ।

अध्यात्म की सर्वोच्च भूमिका तक पहुँचने के लिए सबसे पहले दोषों को छोड़ना होगा । इसके बिना हमारी आध्यात्मिक विकास–यात्रा शिखर को छू न सकेगी । अध्यात्म के विकास के लिए हमें अपने भीतर रहे दुर्गुणों को दूर करना होगा ।

आत्मविकास में बाधक सबसे अधिक खतरनाक दोष है– पर–निन्दा । अन्य में विद्यमान दोषों को प्रकट करना, पर–निन्दा है ।

पर–निन्दा ऐसा मधुर विष है, जो आत्मा के गुणों का धीरे-धीरे घात करता है । दूसरे के दोषों को प्रकट कर निन्दक व्यक्ति यही मानता है कि मैं दोषों से सर्वथा मुक्त हूँ, परंतु यह उसका झूठा दम्भ है ।

उत्तम पुरुष अन्य किसी के दोष देखते नहीं और बोलते भी नहीं । मध्यम पुरुष अन्य के दोष देखते है परंतु बोलते नहीं, जबकि अधम व्यक्ति जहाँ जाता है, दोष ही देखता है और दोष ही बोलता है । अतः हमें अपने जीवन में पर–निंदा दोष का त्याग करना चाहिए ।

8

संसार में स्वजन भिन्न-भिन्न मार्ग के पथिक है

रेल–यात्रा में सैकड़ों लोगों से मिलते हैं, पाँच-पच्चीस से बातचीत भी करते हैं, परन्तु उनका प्रेम कब तक ? जब तक आपका स्टेशन नहीं आता है तब तक । ज्योंही आपका स्टेशन आया, आप नीचे उतर जाते हैं और घर पहुँचते–पहुँचते उन सहयात्रियों को भूल जाते हैं । उनसे कोई नाता नहीं, कोई रिश्ता नहीं, कोई याद नहीं, कोई फरियाद नहीं । आप उन्हें भूल जाते हैं और वे आपको भूल जाते हैं । फिर क्या पता, इस जीवन में पुनर्मिलन होगा या नहीं ।

बस, अपनी आत्मा की इस अनंत-यात्रा में हमें अनेक पथिक मिले हैं और मिल रहे हैं । कोई भाई के रूप में है तो कोई बहन के रूप में । कोई माता के रूप में है तो कोई पिता के रूप में । परन्तु आखिर तो ये सब पथिक है । जैसे मार्ग में किसी पथिक का सिर्फ चेहरा देखते हैं तो किसी से दो मिनिट बात भी करते हैं और किसी के साथ नाश्ता भी कर लेते हैं ।

बस, इस संसार में भी अनेकों का हम मात्र चेहरा ही देख पाते हैं और कइयों के साथ दस-बीस दिन रहते भी हैं,परन्तु आखिर तो हम पथिक हैं । विश्रामगृह में कब तक ठहर सकते हैं ? कुछ समय बाद तो उसे छोड़ना ही पड़ता है ।

बस, यह जीवन भी विश्रामगृह है । यहाँ स्वजन कुटुम्ब आदि का जो मेला है, वे सभी अलग–अलग मार्ग के पथिक हैं । अतः अल्प समय के लिए ही सबका मिलन हुआ है, फिर तो वे सब अपनी अपनी दिशा में आगे बढेंगे । स्व-स्व कर्म के अनुसार स्वजन-कुटुम्ब का यह पंखीमेला है । यह पंखीमेला तो प्रातःकाल होते ही बिखर जाने वाला है ।

9

पारसमणि से बढकर है- 'पारसनाथ भगवान'

जगत् में जिसका जन्म हुआ है, उसके जन्म के साथ ही रोग, जरा और मृत्यु की पीड़ाएँ साथ में जुड़ी हैं । ऐसे जन्म, जरा और मृत्यु रूप भवभ्रमण का लगभग 2800 वर्ष पहले श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन श्री पार्श्वनाथ भगवान ने अंत लाकर, शाश्वत पद–मोक्ष पद प्राप्त किया था ।

यदि जीवन में शांति, मरण समय समाधि, परलोक में सद्गति और परंपरा से मुक्ति पाने की इच्छा हो तो, विशेष कर श्री पार्श्वनाथ भगवान की आराधना करनी चाहिए ।

पारसमणि और पारस प्रभु में बड़ा अंतर है । पारसमणि तो लोहे को सोना ही बनाने में समर्थ है, परंतु स्वतुल्य बनाने में समर्थ नहीं है, जबकि पारसनाथ प्रभु तो अपने भक्तों को स्वतुल्य बना देते हैं ।

परमात्मा सर्वज्ञ और वीतराग होने पर भी सर्वाधिक उदार हैं । जगत् का ऐसा कोई सुख नहीं, जो परमात्मा की भक्ति से प्राप्त न हो सके । सांसारिक सुखों की चाह में हम देवाधिदेव वीतराग परमात्मा की भक्ति को गौण करके सामान्य देवी-देवता को मुख्य बना दें, तो यह परमात्मा की आशातना ही है ।

पारसमणि के प्रभाव से सिर्फ एक जीवन के भौतिक सुख मिल सकते हैं, जबकि पार्श्वप्रभु की भक्ति को भवोभव मे सुख देनेवाली है ।

10 सुदृढ़ संयमी थे श्री हीरसूरिजी

लोहे के चने चबाना आसान है, परंतु जीवन में अध्यात्म भाव को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है । अनादि काल के कुसंस्कारों के कारण जीवात्मा को अर्थ और काम की प्रवृत्ति में जो रस होता है, वह रस उसे आत्महितकर प्रवृत्ति में जुड़ने नहीं देता है ।

आत्महित को लक्ष्य में रखकर प्रवृत्ति करनेवाले लोग ही शिष्ट पुरुष कहलाते हैं । ऐसे शिष्ट पुरुषों के अनुसार यदि अपना जीवन बनाया जाय तो हम भी अध्यात्म के ऊँच शिखर पर चढ़ सकते है ।

जैनशासन में निर्दिष्ट चारित्रमार्ग स्वोपकार के साथ परोपकार भी करता है । अपना आत्महित करने वाला ही जगत् में सच्चा परोपकार कर सकता है । आचार्य श्री हीरसूरीश्वरजी म.सा. ने अपने आत्महित के साथ परोपकार किये ।

अकबर सम्राट् के दिल में आचार्य श्री हीरसूरिजी म. के प्रति पूर्ण आदर सम्मान था । आचार्य श्री के दर्शन पाने के लिए वह अत्यंत उत्सुक था । इसलिए उन्हें दिल्ली बुलाने हेतु उसने हाथी-घोड़े- पालखी आदि का उपयोग करने की भी विनती की, परंतु अपने साध्वाचार के पालन में सुदृढ़ पूज्य हीरसूरिजी म. ने शासन–प्रभावना के नाम पर भी किसी अपवाद मार्ग का सेवन नहीं किया, बल्कि वे पादविहार करते हुए ही क्रमशः आगे बढ़े । उनके उग्र संयम जीवन के कारण ही सम्राट् अकबर ने उन्हे ''जगद् गुरु'' पद से नवाजा था ।

आचार संपन्न व्यक्ति ही धर्म की सच्ची प्रभावना कर सकता है ।

11 जीवन विकास की नींव है-विनय गुण

लोहचुंबक अपने आसपास में रहे लोहकणों को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार विनय गुण अन्य सभी गुणों को खींचकर ले आता है ।

चाबी हाथ में हो तो तिजोरी में रहे धन को प्राप्त किया जा सकता है, उसी प्रकार जीवन में विनय गुण हो तो अन्य सभी गुणों को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है । सभी गुणों को पाने के लिए विनय गुण चाबी रूप है ।

वृक्ष तभी तक हरा-भरा और फलदायी रह सकता है, जब तक वह जड़ से जुड़ा होता है । जड़ को काटने के बाद वृक्ष लंबे समय तक टिक नहीं सकता, न वह हरा-भरा रह सकता है । इससे भविष्य में फल की आशा रखना तो व्यर्थ ही है ।

जिस प्रकार वृक्ष की सुंदरता व विकास, मूल के अधीन है, उसी प्रकार आत्मा का संपूर्ण विकास विनय गुण के अधीन है ।

जीवन में विनय है, तो सभी गुणों का विकास है, और जीवन में से विनय गुण चला गया तो आत्मा का विकास अवरुद्ध हुए बिना नहीं रहता है ।

वर्तमान विश्व में शिक्षण खूब बढ़ा है, परंतु जीवन–विकास में नींव समान विनय गुण का नाश हुआ है । जिस कारण आज लोगों के पास धनसंपत्ति बढी है, परंतु गुणसंपत्ति का नाश हुआ है ।

जीवन में गुणों का विकास करने के लिए विनय गुण को आत्मसात् करना चाहिए ।

ठीक ही कहा है–'जो झुकता हैं, वह पाता है ।'

12 गुणदृष्टि से गुणों की प्राप्ति होती है

समुद्र खारे जल से भरा होता है, परंतु उसमें भी रत्न पाए जाते हैं, उसी के कारण वह रत्नाकर कहलाता है । रत्नों की प्राप्ति समुद्र से होती है । परंतु कोई व्यक्ति समुद्र में रहे खारे जल को देखकर, उससे घृणा करे तो वह व्यक्ति कभी भी रत्नों को प्राप्त नहीं कर सकता है । जो व्यक्ति समुद्र के खारे पानी की उपेक्षा कर दिन-रात मेहनत करता है वही व्यक्ति रत्नों को प्राप्त कर सकता है ।

उसी प्रकार यह संसार दोषों की खान है । दोषों की खान रूप इस संसार में गुणदृष्टि वाला व्यक्ति, समुद्र में से रत्नों की भाँति, अन्य के सद्गुणों को ग्रहण कर सकता है । परंतु दोषदृष्टि वाला व्यक्ति समुद्र के खारे पानी की भाँति, हर जगह मात्र दोषों को देखकर अपने दोषों को ही बढ़ाता है ।

जो व्यक्ति अन्य में रहे दोषों की उपेक्षा कर और उसके गुणों को देखकर हर्ष का अनुभव करता है, गुणीजनों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता है, वह व्यक्ति अपने जीवन में उन गुणों को अवश्य प्राप्त करता है ।

हमसे छोटे व्यक्ति में, कोई छोटा भी गुण हो, जो हमारे लिए हितकारी हो, तो वह भी ग्रहण करने योग्य है । गुण का संबंध उम्र से नहीं, परंतु कर्मों के क्षयोपशम से है । छोटी उम्रवाले बालकों में भी बड़े गुण हो सकते हे, अतः वे भी प्रशंसनीय और ग्राह्य हैं ।

13 प्राप्त में असंतोष और अप्राप्त की आशा

चार गतिरूप इस संसार में आत्मकल्याण का विचार और आत्म–कल्याण की साधना मात्र मनुष्यजीवन में ही शक्य है ।

देवगति में धर्म कठिन है, क्योंकि वहाँ भोग–सुख के साधनों की भरमार है । भौतिक सुख में धर्म नहीं हो सकता है । साथ ही वे दिन कब पूरे हो जाते हैं, वह पता भी नहीं चलता है ।

नरकगति में धर्म कठिन है, क्योंकि वहाँ प्रतिपल असह्य दुःख मजबूरी से सहन करने पड़ते है । सामान्य दुःखों में भी जब धर्म याद आना शक्य नहीं है, तो मरणांत पीड़ाओं में धर्म कैसे याद आ सकता है ? दुःख के अतिरेक में क्रोध भी बढ़ता है ।

तिर्यंच (पशु) गति में अज्ञानता एवं भूख के कारण धर्म शक्य नहीं है । जब तक पेट ही भरा न हो, तब भगवान कैसे याद आएँ ? साथ ही तिर्यंच मात्र वर्तमानलक्षी होते है, उन्हें भविष्य का विचार ही नहीं होता है ।

मात्र मनुष्यजन्म में ही धर्माराधना हो सकती है । परंतु अधिकांश मनुष्य धर्म आराधना से वंचित रहते हैं ।

प्राप्त हुई सामग्री में असंतुष्टि और अप्राप्त की आशा में व्यक्ति जिंदगी भर रोता ही रहता है ।

कुदरत की भेंट में प्राप्त हुए 24 घंटों में व्यक्ति का अधिकांश समय शरीर की सुख–सुविधा प्राप्त करने में ही चला जाता है । आत्मा तो याद ही नहीं आती है ।

आत्मा की विस्मृति यही हमारे लिए पतन का मार्ग है ।

14 सच्चा सुख, बाहर नहीं परंतु भीतर है

जिस प्रकार एक गरीब के दिल में अमीर बनने के अरमान होते हैं, उसी प्रकार जैनधर्म को प्राप्त प्रत्येक आत्मा को संयमी बनने के अरमान होते हैं ।

अपनी सर्वोच्च संपत्ति को छोड़कर तीर्थंकरों ने स्वयं संयम जीवन को स्वीकार कर केवलज्ञान प्राप्त कर शाश्वत सुख का मार्ग बताया है । उस शाश्वत सुख की चाह में छह खंड के चक्रवर्ती, राजा, महाराजा ने सर्वसंग त्याग कर वह मार्ग अपनाया है ।

संयम–जीवन यानी, मन, वचन और काया से हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह रूप पापों का स्वयं त्याग करना, अन्य के पास इन पापों को नहीं करवाना और कोई इन पापों का सेवन करता हो तो उसकी अनुमोदना भी नहीं करना ।

इन पाँच महाव्रतों के निरतिचार–पालन से आत्मा अपने सर्वकर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करती है ।

भगवान महावीर ने इच्छा–पूर्ति में सुख मानती इस दुनिया को शाश्वत सुख पाने के लिए इच्छामुक्ति का मार्ग बताया है ।

जैसे–जैसे व्यक्ति की इच्छाएँ पूरी होती जाती हैं, वैसे–वैसे इच्छाएँ बढ़ती जाती हैं । रेगिस्तान की धरती पर जब गर्म हवा चलती है, तब वहाँ मृग को पानी की भ्रांति होती है, उसे पाने के लिए वह दौड़ता है, परंतु उसे पानी की प्राप्ति नहीं होती । बस, इसी प्रकार लाग सुख पाने के लिए इच्छा पूर्ति का मार्ग अपनाते हैं, परंतु सुख नहीं मिलता ।

सच्चा सुख बाहर नहीं, आत्मा के भीतर है, जिसे पाने हेतु संयम जीवन ही एक साधना है ।

निर्मल संयमधर्म की साधना द्वारा आज तक अनंत आत्माओं ने शाश्वत अजरामर सुख को प्राप्त किया है ।

15 जीवन में पाप का डर जरूरी है

जैनशासन में त्याग को सबसे अधिक महत्त्व दिया है । तीर्थंकर, चक्रवर्ती और राजा संपत्तिवाले थे इसलिए वे पूजनीय नहीं होते, परंतु धन–संपत्ति प्राप्त करके भी उनसे विरक्त होकर सभी का त्याग करते है, इसलिए वे पूजनीय हैं । वे मानते थे कि संपत्ति के संग्रह में पाप है । इस पाप से बचने के लिए वे सर्वसंग और संपत्ति को छोड़कर निष्पाप जीवन जीते थे । आज भी जैनशासन में यह त्यागमय संयम धर्म अखंडित रूप से चला आ रहा है ।

हमारे जीवन में होनेवाले पापों का डर हमें नहीं लगता । कोई दूसरा व्यक्ति हमारे प्रति हिंसा, झूठ और चोरी करे हो तो उसे जरूर हम पापी मानते हैं, परंतु जो हिंसा, झूठ और चोरी का पाप हम करते हैं, क्या हम उसे पाप मानते हैं ? क्या हम अपने आप को पापी मानते हैं ?

विश्व में रहे 1500 से अधिक धर्मो में मात्र जैनधर्म ही धन को पाप मानता है । इसलिए जैनशासन में साधुधर्म की आराधना में धन का संपूर्ण त्याग बताया है, जो आज भी पालन हो रहा है ।

जगत् में सभी लोगों को साँप आदि से डर लगता है, परंतु पाप से भय नहीं लगता, यह खेद की बात है । साँप आदि से होनेवाला नुकसान मात्र एक जन्म का है, परंतु पाप से होनेवाला नुकसान जन्म–जन्मातरों तक है । हमारे जीवन में होने वाले पापों का यथाशक्ति त्याग और हो चुके पापों का स्वीकार और पश्चात्ताप करके हम भी परमात्म-स्वरूप मोक्षपद प्राप्त कर सकते हैं ।

16 काल नहीं कलेजा खराब है

लंगड़े व्यक्ति को अपने गंतव्य स्थल तक पहुँचने के लिए लकड़ी की जरूरत होती है, वैसे ही हमें हमारे आत्मकल्याण के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए सद्गुरु की जरूरत है ।

लोहा, चांदी से हल्का माना जाता है, परंतु वह पारसमणि का स्पर्श कर ले, तो सोने में बदल जाता है । उसी तरह पारसमणि तुल्य सद्गुरु को प्राप्त करके लोहे समान हमारा जीवन भी विकास के मार्ग में आगे बढ सकता है ।

हमारी नकारात्मक सोच के कारण जहाँ भी अपने पुरुषार्थ का फल प्राप्त नहीं होता, वहाँ हम काल को दोष देते हैं, परंतु सच तो यह है कि काल नहीं अपना कलेजा खराब है ।

इस काल में जन्मे हुए कुमारपाल महाराजा ने सद्गुरु श्री हेमचन्द्रसूरिजी को पाकर, अपनी उच्च साधना के द्वारा मात्र दो भवों में मोक्ष पाने का आरक्षण प्राप्त कर लिया था ।

मनुष्य का अधिकांश पतन युवावय में ही होता है । बाल्यवय में बालक शरीर व मन दोनों से कमजोर होता है । वृद्धवय में शरीर कमजोर हो जाता है ।

शरीर कमजोर होने पर मन भी कमजोर हो जाता है । अतः यौवन वय में अपने जीवन की रक्षा के लिए सद्गुरु का योग खूब जरुरी है ।

यौवन वय में सद्गुरु का योग मिल गया तो जीवन सुधर जाता है और सद्गुरु का योग न मिला तो जीवन पतन के गर्त में डूब जाता है ।

17 'धर्मलाभ' ही सच्चा आशीर्वाद है

जैन साधु अपने आशीर्वाद में एक मात्र 'धर्मलाभ' ही देते हैं, क्योंकि वह संपूर्ण और सच्चा आशीर्वाद है । जगत् में प्रसिद्ध धनलाभ, पुत्रलाभ, आरोग्यलाभ आदि आशीर्वाद पूर्ण नहीं हैं ।

जीवन में धन की प्राप्ति होगी, तो भी व्यक्ति पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो सकता, बल्कि वह ज्यादा दुःखी बनेगा, चोर का भय, सरकार का भय आदि अनेक दुःख उसके साथ जुड़े रहेंगे ।

पुत्रलाभ से व्यक्ति सुखी होगा, यह भी एक भ्रमणा है...क्योंकि जगत् में ऐसे कई लोग हैं, जो पुत्रवान होने पर भी वृद्धाश्रम में एकाकी जीवन जी रहे हैं ।

नीरोग व्यक्ति सुखी है तो वह भी सत्य नहीं क्योंकि कई लोग आरोग्य होने पर भी धनहीन होने से अपनी इच्छित कार्यपूर्ति नहीं कर पाते हैं ।

'आयुष्यमान भवः', आशीर्वाद भी निरर्थक है, क्योंकि आयुष्य के साथ शरीर में केंन्सर आदि अनेक बीमारियाँ हों तो वह भी सुखी नहीं है ।

एक मात्र धर्मलाभ रूप आशीर्वाद ही सफल है क्योंकि जीवन में धर्म है, तो उसे हर प्रकार के सुख की सामग्री प्राप्त होगी । जिसके जीवन में धर्म के प्रति पक्षपात होगा, धर्म उस व्यक्ति का हर प्रकार की आपत्ति से रक्षण हेतु कवच बन जाएगा ! धनादि की कमाई तो मात्र इस लोक में साथ देगी, परंतु धर्म की कमाई तो भवो–भव साथ चलेगी अतः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में धर्म ही सर्वोपरि होना चाहिए ।

धर्म के रक्षण में ही आत्मा की सुरक्षा है ।

18

अधिकारी के पास ही सुरक्षित है शस्त्र और शास्त्र

श्रावकजीवन में धर्म क्रिया के आवश्यक सूत्र को विधिवत् ग्रहण करने के लिए उपधान तप की आराधना है, उसी प्रकार साधुजीवन में भी परमात्मा की वाणी स्वरूप आगमशास्त्रों का अभ्यास करने के लिए योगोद्वहन की क्रिया जरूरी है ।

वाहनचालक को वाहन चलाना व्यवस्थित आने पर भी यदि वह परीक्षा देकर लायसेंस ग्रहण न करे, तो वह आरोपी गिना जाता है । बस, वैसे ही भगवान की वाणी स्वरूप आगम ग्रंथ को पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार उसी व्यक्ति को मिल सकता है, जो उन आगम ग्रंथों पर पूर्वाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट विधि से योगोद्वहन करे ।

हर किसी व्यक्ति के हाथ में शस्त्र आ जाए तो वह नुकसानकारक है और वही शस्त्र, अधिकारी के हाथ में आए तो रक्षण करता है ।

आगमशास्त्र भी शस्त्र के समान हैं, जो योग्य व्यक्ति को प्राप्त हो तो आत्मकल्याण करने में समर्थ हैं और अयोग्य व्यक्ति को प्राप्त हो तो स्व–पर का नुकसान ही करते हैं ।

योगोद्वहन पूर्वक गुरु निश्रा में रहकर शास्त्रों के सुयोग्य अर्थों को ग्रहण करके ही आत्मसाधना में आगे बढ़ा जा सकता है ।

योगोद्वहन की क्रियाओं में एकाग्रता खूब जरुरी है । चित्त की एकाग्रता के अभाव में योगोद्वहन संभव ही नहीं है । योगोद्वहन पूर्वक आगम शास्त्रों का स्वाध्याय किया जाय तो वे शास्त्र स्व-पर उभय को महान लाभ का कारण बनते है ।

19

सात्त्विक आहार से जीवन में सात्त्विकता बढ़ती है

सात्त्विक आहार से जीवन में सात्त्विकता पैदा होती है ।

जिस व्यक्ति के जीवन में मांसाहार, शराब, अण्डा आदि का सेवन होता है, उसके जीवन में क्रोध की प्रबलता रहती है । छोटी–छोटी बातों पर खून–खराबा करना उसका स्वभाव बन जाता है । मांसाहार रूप तामसी आहार लेने से शरीर का खून गर्म होता है, जो व्यक्ति को क्रोधी बनाता है । अतः मांसाहार त्याज्य है ।

जिस व्यक्ति के जीवन में स्वादिष्ट भोजन का सेवन होता है, उसके जीवन में विकार–वासना की प्रबलता देखने को मिलती है । वर्तमान में एक ओर स्वादिष्ट भोजन से मन में वासना बढ़ी है, तो दूसरी ओर उद्‌भट एवं तंग वस्त्रों के कारण जन–जन में आँखों की पवित्रता का नाश हुआ है ।

देश में बढ़ती बलात्कार आदि की घटनाओं का मुख्य कारण राजसी आहार है और वस्त्र–पहनावे में पश्चिमी संस्कृति का अनुसरण है । आज शरीर पर वस्त्र नहीं परंतु वस्त्र के साथ नग्नता पहनी जाती है ।

जिसे जीवन में शांति एवं मन में निर्विकारता की इच्छा है, उसे अपना भोजन, सात्त्विक बनाना चाहिए ।

''जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन'' की प्रचलित कहावत के अनुसार हमारे भोजन का सीधा असर हमारे मन पर होता है । मन यदि नियंत्रित और पवित्र रहता है, तो आत्मा अनेक पापों से बच सकती है ।

यदि मन पर नियंत्रण और मन की पवित्रता नहीं है, तो जीवन में आत्मिक विकास सम्भव नहीं है ।

आयंबिल तप के द्वारा सात्त्विक भोजन ग्रहण करने से जीवन में सात्त्विकता एवं निर्विकारता प्रकट होती है । आयंबिल के भोजन में पेट की पूर्ति होती है और रसना पर नियंत्रण प्राप्त होता है । नवपद की ओली में आयंबिल तप करने से जीवन में शांति, परलोक में सद्‌गति एवं परंपरा से मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

20 जबान पर लगाम जरूरी है

इस जीवसृष्टि में एक मात्र मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसको अपने मन के भीतर रहे अच्छे-बुरे भावों को प्रकट करने की शक्ति प्राप्त हुई है । जीभ के दो कार्य हैं, बोलना और स्वाद लेना । पशुओं को जीभ प्राप्त हुई है, परंतु उसका उपयोग मात्र स्वाद लेने में है ।

पशु अपने भीतर रहे अच्छे-बुरे भावों को शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकते हैं । कुदरत की यह सबसे बड़ी सजा है कि पशु बोल नहीं सकते ।

कुदरत की यह सबसे बड़ी देन है कि मनुष्य अपने भावों को शब्दों से व्यक्त कर सकता है । जिस प्रकार हाथी पर महावत का अंकुश, गाड़ी की रफ्तार पर ब्रेक जरूरी है, उसी प्रकार जबान पर लगाम जरूरी है । जहाँ जबान पर लगाम नहीं है, वहाँ अनर्थ खडे हुए बिना नहीं रहता है ।

भूतकाल में मंथरा और द्रौपदी के वचनों ने ही रामायण और महाभारत के युद्ध को अंजाम दिया था । मनुष्य जब स्वाद का गुलाम बनता है तो अस्पताल की जरूरत पड़ती है और बोलने में लगाम नहीं होती है, वहाँ न्यायालयों की जरूरत पड़ती है ।

मनुष्य अपनी बोली को टेलिग्राफिक (संक्षिप्त) कर दे तो 90% झगड़े बंद हो जाएँ । मानव अपनी वाणी का सदुपयोग करे तो पूरे विश्व में आज ही रामराज्य आ सकता है । विश्व में रामराज्य लाना हमारे बस की बात नहीं परंतु हमारे घर में, हमारे जीवन में रामराज्य आज ही आ सकता है ।

21

गुरु-समर्पण भाव से गुरु गौतम, महान बने

पानी दूध को समर्पित होता है तो दूध की सफेदी पानी को मिल जाती है, बस, इसी प्रकार साधनामार्ग में जो साधक आत्मा, अपने गुरु के चरणों में समर्पित होता है, उसे गुरु के पास रहा ज्ञान एवं गुरु में रही शक्तियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं ।

जो शिष्य गुरु को पूर्ण समर्पित होते हैं, उनको गुरु के हृदय में स्थान मिलता है, जिसके फलस्वरूप गुरुकृपा के बल से वे संसार–सागर को पार करते हैं, तो लब्धियों की प्राप्ति होना, कोई आश्चर्य नहीं है ।

श्री गौतम गणधर ने अपने गुरु भगवान महावीर को अपना सर्वस्व अर्पण किया था, जिससे उनको अनंत लब्धियाँ प्राप्त हुई थी । भगवान महावीर के 14000 शिष्यों में से मात्र 700 ही मोक्ष गए परंतु अपने समर्पण भाव से गुरु गौतम ने ऐसी शक्ति प्राप्त की कि जिससे वे जिसको भी दीक्षा प्रदान करते, वे मोक्ष में जाते । उनके 50000 शिष्य थे, वे सभी मोक्ष में गए । ऐसी शक्ति का मुख्य कारण उनका समर्पण भाव था ।

जीवन में धन आदि को छोडना आसान है, परंतु अपने अहंकार का विसर्जन करना खूब कठिन है । मानव सब कुछ छोड सकता है, परंतु अपने अहंकार को छोडना बहुत ही मुश्किल हैं, जो अहंभाव को छोडता हैं, वह गौतम की तरह महान बनता है ।

22

चंचल इन्द्रियाँ, आत्मा को दुर्गति में डुबो देती हैं

पाँच इन्द्रियाँ मानव की महान् सम्पत्ति हैं । इनके सदुपयोग से वह मुक्तिमार्ग की साधना सरलता से कर सकता है ।

ज्ञानियों ने इन्द्रियों को घोड़ों की उपमा दी है । मानवदेह रूपी रथ का सारथी आत्मा है, जो इन्द्रिय रूपी घोड़ों से जुड़ा है । यदि सारथी–आत्मा सावधान है और संयम रूपी लगाम से घोड़ों को अपने नियंत्रण में रखने की कला में प्रवीण है, तब तो रथ अपने इच्छित स्थान पर पहुँच जायेगा, परंतु सारथी असावधान है, और लगाम अपने हाथ में न हो, तो ये चंचल घोड़े रथ को अवश्य ही खड्डे में गिरा देंगे ।

आत्मा यदि चंचल इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रखेगी तो ये इन्द्रियाँ उसे दुर्गति के गर्त में डाल देगी ।

इन्द्रियाँ स्वभाव से अतिचंचल हैं, अतः इनको वश में रखना अनिवार्य है । अन्यथा आत्मा स्वयं इन्द्रियों की गुलाम बन जाती है । इन्द्रियों की गुलाम आत्मा स्वकर्तव्य से भ्रष्ट होती है ।

हथिनी में मोहित बना हाथी आजीवन कैदी बनता है ।

मांस के टुकड़े में लोभी बनी मछली को मौत के शिकंजे में फँसती है ।

कमल की सुगंध में मस्त बने भ्रमर को मौत का मेहमान बनना पड़ता है ।

दीपक के तेज में आसक्त पतंगा उसी में स्वाहा हो जाता है । संगीत के मधुर स्वरों में लुब्ध हिरण भी बाणों से बींधा जाता है ।

इन्द्रियों के इस तांडव से बचने के लिए मोक्षार्थी को संयम का सहारा लेना चाहिए ।

इन्द्रियों के संयम में ही आत्मा की सुरक्षा है ।

23 जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा करें

संसार में रहे सभी जीवों को जीना पसंद है, मरना किसी को पसंद नहीं है, यदि हम लम्बा जीवन और आरोग्यवान शरीर चाहते हैं तो हमें हमारे जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठा करनी होगी ।

प्रकृति का यह सनातन नियम है कि हम जो बीज बोते हैं, उसके अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है । बबूल को बोकर आम्रफल की प्राप्ति हो, ऐसी आशा रखना मुर्खता है । बस, इसी प्रकार जीवन जीने के लिए अन्य जीवों को परेशान करना और बाद में जीवन में शांति की आशा रखना मुर्खता है ।

मानवशरीर को टिकाने के लिए आहार की आवश्यकता रहती है । उस आहार की पूर्ति अन्न-शाक आदि द्वारा भी की जा सकती है, तो फिर शरीर को टिकाने और मात्र अपनी स्वाद की गुलामी से मांस का भक्षण करना उचित नहीं है ।

किसी भी जीव की हत्या करने के लिए हृदय निर्दय बनता है । मांस को पाने के लिए अबोल पशुओं की हत्या करते समय उन पशुओं को भयंकर यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं । अन्य के घर में होली सुलगानेवाले अपने घर में दिवाली कैसे मनाएंगे ?

जीभ के स्वाद के लिए जो अन्य प्राणियों के प्राण लेता है, कर्म सत्ता उसके इस अपराध को कैसे माफ करेगी ? जो दूसरों के प्राण लेता हैं, भविष्य में उसको बूरी मौत मरना पडता है, अतः अपना भला चाहते हो तो दूसरे प्राणियों को मारना बंद करें ।

24

जीवन के लिए भोजन है, भोजन के लिए जीवन नहीं

जिस प्रकार बोलने पर लगाम जरूरी है, उसी प्रकार स्वाद पर भी लगाम जरूरी है ।

भोजन तो जीवन का अनिवार्य अंग है ।

जीवन जीने के लिए भोजन करना है, परंतु कई लोग भोजन हेतु जीते हैं ।

स्वाद में मुग्ध बना मानव आज कुछ भी देखने को तैयार नहीं कि खायी जानेवाली वस्तु खाने योग्य है या नहीं ।

गाय कभी मांस नहीं खाती, बाघ और सिंह कभी घास नहीं खाते, कुत्ता कभी कागज नहीं खाता परंतु आश्चर्य है कि स्वाद के लिए मानव सभी वस्तुएं खाता है । एक मात्र मानव ही ऐसा है, जो अपने भोजन के लिए किसी भी प्राणी को नहीं छोड़ता ।

भोजन–विवेक का मुख्य उद्देश्य आत्मा की निर्मलता है । मन की प्रसन्नता और आरोग्य की प्राप्ति भी होती है । स्वाद में लोलुप बना व्यक्ति इन तीनों उद्देश्यों को भूल जाता है । एक कहावत है–''जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन ।''

भोजन में मांस को पसंद करने वाले व्यक्ति के जीवन में क्रोध व हिंसा का प्रमाण देखने को मिलता है ।

जो व्यक्ति ज्यादा मिर्च–मसाले युक्त भोजन करता है, वह अपने जीवन में काम-वासना से पीड़ित बनता है ।

अल्प भोजन, भूख से कम भोजन और हितकारी भोजन करने से तन–मन में स्फूर्ति बढ़ती है । आरोग्य की प्राप्ति होती है और जीवन में खुशहाली आती है । पशु भी अपने भोजन में विवेक करता है, तो मनुष्य को अपने जीवन को बेहतर बनाने हेतु स्वाद पर लगाम लगाना जरूरी है ।

25

गुणसम्पन्न बनने के लिए गुणवान् का गुणगान जरूरी

कितनी ही ऊँची इमारत क्यों न हो, यदि उसकी नींव मजबूत नहीं है, तो उसकी कोई कीमत नहीं है , उसी प्रकार हमारे जीवन में चाहे जितनी प्रगति हो, यदि प्राथमिक गुणों का अभाव है, तो उस प्रगति की कोई कीमत नहीं है ।

गुणसम्पन्न बनने का सरल उपाय है–गुणों का पक्षपात अर्थात् गुणीजनों के गुणों की अनुमोदना । गुणपक्षपात एक ऐसा बीज है, जिसे अपनी आत्मा रूपी भूमि में बोने से वह एक विशाल वृक्ष का रूप धारण करेगा, फिर उस वृक्ष पर गुण रूपी अनेक फल लग जाएंगे ।

वट के छोटे से बीज में विशाल वृक्ष छिपा है, उसी प्रकार 'गुणानुराग' में सर्व गुणों को विकसित करने की ताकत है ।

''गुणानुराग गुण अत्यंत दुष्कर है । जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि होती है, गुणदृष्टि से गुणसृष्टि पैदा होती है, और दोषदृष्टि से दोषों की सृष्टि का सर्जन होता है । दोषदृष्टि का विकास अधिक होने से हमें अन्य के जीवन में रहे छोटे दोष भी बड़े लगते हैं और अपने बड़े दोष भी नजर नहीं आते हैं । आत्मा को गुणमय बनाने के लिए हमें अपने दोषों की निंदा और अन्य के गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए ।

दूसरे के गुणों की अनुमोदना करने से अपने तथाभव्यत्व का भी परिपाक होता है ।

महान् पुण्य से जीव एकेन्द्रिय अवस्था से आगे बढ़ता हुआ बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय अवस्था में आता है । पंचेन्द्रिय अवस्था में भी (तिर्यंच) पशु भव सुलभ है, परंतु मनुष्य भव अत्यंत दुर्लभ है ।

पशुओं के भी जीभ होती है, परंतु उस जीभ द्वारा वे एक मात्र खाने का ही काम कर पाते हैं, जीभ के द्वारा स्पष्ट उच्चारण नहीं कर पाते हैं ।

मनुष्य को स्पष्ट वाणी मिली है । वाणी के द्वारा मनुष्य अपने हृदय के भावों को स्पष्ट रूप से कह सकता है । अपने सुख, दुःख के संवेदन को व्यक्त कर सकता है । ऐसी वाणी की प्राप्ति होने पर हमारा परम कर्तव्य है कि हमें सत्य बोलना चाहिए और झूठ का त्याग करना चाहिए ।

मनुष्य को झूठ बोलने के मुख्य कारण क्रोध, लोभ, भय और हास्य होते हैं ।

जिस प्रकार अपथ्य भोजन करने पर शरीर में अनेक रोग पैदा होते हैं उसी प्रकार असत्य वचन से वैर, विषाद तथा अविश्वास आदि अनेक दोष पैदा होते हैं । झूठे व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता अतः हमें जीवन में असत्य वचन का त्याग करना चाहिए ।

हिंसा व चोरी की भांति झूठ बोलना भी बहुत बडा पाप है । हिंसा व चोरी को तो सभी पाप मागते है, परंतु झूठ बोलना भी बहुत बडा पाप हैं, इस सत्य को विरले लोग ही स्वीकार करते है । कई लोल निष्कारण और बात-बात में झूठ बोल देते है, जो भयंकर पाप ही है ।

27 जीवन को दुर्ध्यान से बचाना जरूरी है

जिंदगी सागर की भांति है । सागर में कभी ज्वार, तो कभी भाटा, कभी लहरों के वेग के कारण सागर के जलतरंग उछलने लगते हैं, तो कभी सागर एकदम शांत व गंभीर बन जाता है ।

अपनी जिंदगी भी सागर की भाँति है । इसमें भी कभी चढ़ाव तो कभी उतार आते रहते हैं । कभी अनुकूलताएँ, तो कभी प्रतिकूलताएँ, कभी सुख तो कभी दुःख, कभी संपत्ति का पार नहीं, तो कभी विपत्तियों की सीमा नहीं । कभी जंगल तो कभी मंगल । कभी लाखों सलाम भरनेवाले मिलते हैं, तो कभी कोई सामने देखनेवाला भी नहीं होता है ।

ऐसी विचित्र और विविधताओं से भरी जिंदगी में जो अपने चित्त को समतौल रखकर प्रसन्न रह सकता है, वही व्यक्ति जीवन के वास्तविक आनंद को प्राप्त कर सकता है ।

सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि सब कर्माधीन है, किंतु जब मानव अपने कर्म के विचार को भूलकर, निमित्त को प्रधान बना देता है, तब उसकी जिंदगी आर्त-ध्यान की आग में झुलसने लगती है ।

यदि अपने जीवन को आर्तध्यान से बचाना हो, तो दुःख के हर प्रसंग में निमित्त को गौण कर कर्म को मुख्य बनाना सीखें ।

जिसका मन दुर्ध्यान ग्रस्त हैं वह अमाप भौतिक साधनों के बीच भी महा दुःखी है और जिसका मन शुभ ध्यान से जुडा हुआ हैं, वह अल्प सामग्री के बीच भी महासुखी है ।

28 माध्यस्थ भाव जरूरी है

अध्यात्म की प्राप्ति के लिए जीवन में माध्यथ्यभाव अत्यंत जरुरी है । मध्यस्थ व्यक्ति में न अतिराग होता है और न अतिद्वेष, इसी कारण वह किसी भी घटना के मूलभूत रहस्य को समझने की पूरी कोशिश करता है ।

जिस व्यक्ति अथवा पदार्थ के प्रति तीव्र राग होता है, उस व्यक्ति में रहे दोष कभी नजर नहीं आते हैं, क्योंकि जहाँ तीव्र राग होता है, वहाँ दृष्टि एकपक्षीय हो जाती है ।

जिस व्यक्ति अथवा पदार्थ के प्रति तीव्र द्वेष होता है, उस पदार्थ में रहे गुण दिखाई नहीं देते हैं । तीव्र द्वेषवाले की दृष्टि सिर्फ व्यक्ति या वस्तु में रहे दोषों को ही ढूँढ़ने का प्रयत्न करती है ।

मध्यस्थ व्यक्ति ही किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा सिद्धान्त में रहे गुण-दोषों का न्यायपूर्वक विश्लेषण कर सकता है ।

असत् का पक्षपात अत्यंत खतरनाक है । कदाग्रह के जाल में फँसा हुआ व्यक्ति, किनारे आई नाव को डुबो देता है । तत्त्व के निर्णय के बाद तो सत्य का पक्षपात होना चाहिए । मध्यस्थ व्यक्ति सत्य-असत्य का विवेक कर सत्य को पकड़ने और असत्य को छोड़ने की कोशिश करता है ।

29

भौतिक साधनों के संग आत्मसाधना नहीं होती है

विश्व में कुछ जहर ऐसे हैं, जो मनुष्य को धीरे–धीरे मारते हैं जबकि कुछ जहर ऐसे होता हैं जो मनुष्य को तत्क्षण मार देता हैं । तालपूट जहर एक ऐसा जहर है, जो मात्र जीभ के स्पर्श से व्यक्ति मर जाता है ।

जिसके जीवन का लक्ष्य आत्मसाधना है, उसके लिए सुंदर और मूल्यवान वस्त्र, शरीर की विभूषा, स्त्री का संसर्ग, प्रणीत और रसप्रद भोजन, ये सब तालपूट जहर के समान हैं जो आत्मसाधना से विचलित करनेवाले हैं । अतः आत्मसाधना के लक्ष्यवाली आत्मा को इन साधनों से दूर रहना उचित है ।

शरीर की विभूषा करने से विजातीय तत्त्व को आकर्षण अवश्य होता है । इससे बचने के लिए आत्मसाधक को विभूषात्याग करना चाहिए । शरीर पर मैल जमा हो, मस्तक मुंडित हो, अथवा बाल जैसे-तैसे हो, कपड़े भी मैलें हो, तो अन्य किसी को राग भाव पैदा नहीं कराएंगे । किसी को आकर्षित नहीं करेंगे । इसी कारण साधुजीवन में इन कठिन नियमों का पालन बताया है ।

सिर्फ काया को कष्ट देना, यह जैनशासन को मान्य तप नहीं है, सच्चे तप धर्म के आचरण के साथ हमारे क्रोध–मान–माया और लोभ रूप चार कषायों की हानि होनी चाहिए । जैसे दवाई लेते रहें और रोग बढ़ता जाए, तो उस दवाई का कोई अर्थ नहीं, वैसे ही जीवन में तप-त्याग करते रहें और जीवन में क्रोधादि बढ़ते जाएँ, तो उस तप की कोई कीमत नहीं है ।

आत्मिक आनंद पाने के लिए भौतिक पदार्थों के संग का त्याग और उनका संग रखना पडे तो भी उसके प्रति रहे ममत्व के त्याग का अभ्यास करना चाहिए ।

30

आध्यात्मिक विकास का काल है चातुर्मास

अनंत काल से हमारी आत्मा में जो क्रोध की आग तथा लोभ की प्यास जगी हुई है । इस आग और प्यास को मिटाने में एक मात्र जिनवाणी रूप पानी ही सक्षम है ।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में मेघराजा बरस कर प्राणी–सृष्टि की प्यास बुझाता है, उसी प्रकार वर्षावास के इस आषाढ़ी चातुर्मास में बहती जिनवाणी अंतरात्मा की आग और प्यास बुझाने का कार्य करती है ।

वर्षावास का यह काल आत्मा की सच्ची कमाई करने का मौसम है, आध्यात्मिक विकास का मौसम है । भूतकाल में हुए 18 देशों के राजा कुमारपाल तथा गुजरात के महामंत्री वस्तुपाल तेजपाल एवं पेथड़शाहमंत्री भी इस वर्षावास में अपने राज्य के संचालन से भी अधिक महत्त्व अपनी आत्मा के विकास हेतु अनेकविध त्याग एवं तप को देते थे ।

राज्य के संचालन के अनेकविध कार्यों का भार होने पर भी अपनी आत्मा को न भूलते हुए वे महापुरुष जिनवाणी का श्रवण और शक्ति अनुसार उसका आचरण करते थे, तो हमें भी इन आदर्शों को अपनी नजर के सामने रखते हुए आत्मकल्याण में पुरुषार्थ करना चाहिए ।

वर्षा-काल में चारों ओर सूक्ष्म और बादर जीवों की उत्पत्ति खूब बढ जाती है । उन जीवों की रक्षा के लिए चातुर्मास में अपना जाना–आना कम कर देना चाहिए ।

31 सामायिकधर्म से चातुर्मास सफल करें

मोक्ष का परम और मुख्य साधन सामायिक है । सामायिक धर्म को बताने वाले कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, परंतु सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान हैं ।

जिस सामायिक धर्म की आराधना का स्वयं परमात्मा सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने अपने जीवन में आचरण किया है, ऐसी सामायिक धर्म का ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए ।

एक ओर हमारे शरीर को तीक्ष्ण धारवाले हथियार से छीला जा रहा हो, दूसरी ओर हमारे शरीर पर चंदनादि मूल्यवान और शीतल पदार्थ का विलेपन होता हो, इन दोनों परिस्थितियों में मन एक समान हो, उसे सच्ची सामायिक कहते है ।

कोई भी कठिन कार्य हो, परंतु प्रयत्न किया जाए, तो अवश्य ही उसमें सफलता प्राप्त होती है, उसी प्रकार सामायिक धर्म का बार बार परिशीलन एवं अभ्यास करने पर सर्वज्ञ कथित सच्ची सामायिक की साधना भी की जा सकती है ।

जहां ममता हैं, वहां दुःख है और जहां समता है, वहां सुख है ।

इसी जीवन में सच्चा सुख और जीवन में सच्ची शांति प्राप्त करना है तो समताभाव का अभ्यास करना चाहिए ।

चातुर्मास यह तो धर्म की मौसम है, इन दिनों में प्रतिदिन ज्यादा से ज्यादा सामायिक करने का नियम रखना चाहिए ।

32 सद्गृहस्थ को कामांध बनने से बचाती है लग्न व्यवस्था

वे आत्माएँ पुण्यशाली हैं, जो आजीवन ब्रह्मचर्य का निर्मल पालन करती हैं । परंतु संसार में रहकर इस व्रत का पालन अत्यंत कठिन है । जिन सद्गृहस्थों में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का मनोबल नहीं है, ऐसी आत्माएँ काम-वासना के अतिरेक से अपने जीवन को बर्बाद न कर दे, उसके लिए श्रावक–जीवन के उचित ऐसे दो ब्रेक बताए हैं (1) परस्त्री–गमन त्याग एवं (2) वेश्यागमन का त्याग । इन व्रतों के स्वीकार से आत्मा काम पुरुषार्थ के भयंकर अनर्थों से बच सकती है ।

काम का आवेग अतिभयंकर है । काम के विषय में अंध बने व्यक्ति के विवेक रूपी चक्षु पर आवरण आ जाता है । वह व्यक्ति अपने हित-अहित के बारे में सोच भी नहीं पाता है ।

आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने में असमर्थ व्यक्ति के लिए भारतीय संस्कृति में लग्न व्यवस्था का विधान है । लग्न जीवन की स्वीकृति के द्वारा सद्गृहस्थ अपने काम पुरुषार्थ पर ब्रेक लगाता है । वह अन्य स्त्री को माता, बहिन और पुत्री तुल्य स्वीकार करता है ।

स्व स्त्री में संतोष-भाव धारण कर परस्त्री गमन व वेश्यागमन का त्याग करनेवाला भी सदाचारी कहलाता है ।

मानव जन्म पाकर यदि काम विजेता न बन सको तो कम से कम कामांध तो नहीं बनना चाहिए, इस हेतु लग्न द्वारा भी अपनी काम वासना को नियंत्रित किया जा सकता है ।

33 दुर्जनों का संग दुर्जन बनाता है

मानव-मन पर संगति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । संत व सज्जन पुरुषों का संग उसे ऊपर उठाता है तो दुर्जन की दोस्ती उसे पतन के गर्त में डुबो देती है ।

संत पुरुषों की झोंपड़ी में रहनेवाला तोता भी संतों के समागम से राम-राम बोलना सीखता है, तो वही तोता हिंसक व्यक्ति के समागम से 'मारो-काटो' बोलना सीख जाता है ।

अध्यात्म के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए दुर्जन-दुराचारी, चरित्रहीन व्यक्ति का संग छोड़ना बहुत जरूरी है । जो व्यक्ति मांसाहारी हो, शराब का शौकीन हो, जुँआरी हो, वेश्यागमन और परस्त्री में लंपट हो, ऐसे दुर्जन के संग से कोसों दूर रहना ही एकांत लाभकारी है ।

दुर्जनों की संगति से सदैव नुकसान होता है । दुर्जन से वैर और प्रीति दोनों अहितकर है । दुर्जन तो अंगारे के समान है, अंगारा यदि गर्म हो तो हाथ जलाता है, और ठंडा हो तो हाथ को काला करता है ।

कभी सज्जन पुरुष का समागम न मिले तो एकांत में रह जाना चाहिए परंतु भुलकर भी दुर्जन से दोस्ती नहीं करनी चाहिए । क्योंकि दुर्जनों का समागम हमारे पवित्र जीवन में दाग लगाए बिना नहीं रहेगा ।

विष की एक बुंद के संपर्क से पुष्टि दायक दूध भी जहर में बदल जाता है ।

मानवीय मन शुभ निमित्तों से जितना प्रभावित नहीं होता है, उससे भी बहुत ज्यादा अशुभ निमित्तों से प्रभावित होता है, अतः दुर्जन संग से अवश्य बचे ।

34

आत्मा का पतन और उत्थान मन से होता है

आत्मा का उत्थान और पतन मन पर निर्भर है। ध्यान की शुभ धारा आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाती है और आर्त–रौद्र ध्यान की धारा आत्मा को अधोगामी बनाती है ।

दानधर्म के लिए धन की अपेक्षा रहती है । शीलधर्म के लिए इंद्रियों के संयम की अपेक्षा रहती है । तपधर्म के लिए कायबल की अपेक्षा रहती है, जबकि भावधर्म की साधना के लिए मन की अपेक्षा रहती है ।

भाव मन में पैदा होता है । आत्मा के पतन और उत्थान में मन का सबसे अधिक महत्त्व है । चारों गतियों मे सबसे अधिक शक्तिशाली मन मनुष्य को मिला है ।

देवताओं के पास मन जरूर है, परन्तु उस मन के द्वारा वे सिर्फ सम्यग्दर्शन पा सके या टिका सके, ऐसे 'अध्यवसाय' कर सकते हैं । नारक जीवों की भी यही स्थिति है । तिर्यंच अधिकतम देशविरति धर्म के योग्य अध्यवसाय प्राप्त कर सकते हैं । परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपने मन के द्वारा चौदह गुणस्थानक के योग्य अध्यवसायों को धारण कर सकता है ।

योगीराज आनंदघजी ने भी कहा हैं, 'जिसने मन को जीत लिया हैं, वह विश्व विजेता है और जो मन से हार गया है, वह विश्व का गुलाम है ।

ठीक ही कहा हैं– *'मन के जीते जीत है,*
मन के हारे हार ।'

35 निदान शल्य भयंकर है

जीवन में की गई धर्म–आराधना के फलस्वरूप परलोक में राजा, चक्रवर्ती आदि बनने का संकल्प करना, उसे निदान कहते हैं ।

धर्म के फलस्वरूप परलोक में राज्य आदि समृद्धि की माँग को निदान शल्य कहा जाता है ।

जिस प्रकार पाँव में काँटा लगा हो तो चलना मुश्किल हो जाता है । व्यक्ति की गति में अवरोध पैदा हो जाता है । बस, इसी प्रकार यह निदान भी आत्मा के लिए शल्य तुल्य है । जब तक यह शल्य दूर नहीं होगा तब तक की गई धर्म–आराधना मोक्ष प्रदान करने में समर्थ नहीं बन सकेगी ।

धर्म–आराधना शल्यरहित करनी चाहिए । राग और द्वेष से किए गए निदान के फलस्वरूप आत्मा इस संसार में दीर्घ काल तक भटकती है ।

किए गए धर्म के फलस्वरूप सांसारिक वस्तु माँगने से वह सांसारिक वस्तु एक बार मिल तो जाएगी परन्तु उसके फलस्वरूप आत्मा को दीर्घकाल तक संसार में भटकना पड़ेगा । अतः यह निदान करने योग्य नहीं है ।

भगवान महावीर की आत्मा ने सोलहवें विश्वभूति के भव में 'शक्तिशाली' बनने का नियाणा किया, इसके फल स्वरुप वे 18वें भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव बने । उस भव में भयंकर पापाचरण कर 7वीं नरक में चले गए, अतः भूल से भी अपनी धर्म-आराधना के फलस्वरूप नियाणा न करे ।

36 दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है

जो हाथ देता है वह सदैव ऊँचा रहता है और जो लेता है, वह हाथ नीचे रहता है ।

सागर के पास अपार जल संपत्ति है, फिर भी उसका स्थान नीचा है, किंतु बादल छोटे होने पर भी उनका स्थान ऊँचा है, इसका एक मात्र कारण है, बादल हमेशा दूसरों को पानी देता है और सागर उसका संग्रह करता है ।

पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु उस धन के भोग की इच्छा करना भी पाप है । जो पुण्य से प्राप्त धन का सात क्षेत्रों में दान करता है, उसके लिए वह धन पुण्यानुबंधी पुण्य के बंध का कारण बन जाता है ।

शूरवीर के हाथ में रही तलवार रक्षण का काम करती है और बालक के हाथ में रही तलवार उसी की मौत का कारण बन जाती है ।

सामान्य व्यक्ति के हाथ में रहा जहर मौत का कारण बनता है और वैद्य के पास रहा जहर, औषध का काम करता है । बस, इसी प्रकार कृपण के पास रहा धन दुर्गति का कारण बनता है, जबकि दानवीर के पास रही लक्ष्मी उसकी सद्गति का कारण बनती है । अतः धन को तारक बनाना या मारक बनाना, यह अपने ही हाथों में है ।

हाथ का भूषण कंकण नहीं, किंतु दान है । धर्म की पहली सीढी दान ही हैं, अतः पुण्योदय से प्राप्त धन का दान देने में सदुपयोग कर लेना चाहिए ।

37 हँसना अच्छा भी और बुरा भी

कषाय के कारण हमारी आत्मा का भवभ्रमण होता है । उन कषायों को पैदा करने वाले नौ प्रकार के नोकषाय, कषायों से भी ज्यादा खतरनाक हैं ।

आज छोटी–छोटी बातों में बड़े झगड़े खडे हो जाते हैं, उसके पीछे मुख्य कारण हँसी-मजाक है । हँसी–मजाक में बोले जानेवाले शब्द हृदय को छूकर क्रोध पैदा करते हैं । इसलिए हमें इसका त्याग करना चाहिए, परंतु आज तो हँसी पैदा करने हेतु 'लाफ्टर क्लब' खड़े हो गए हैं । बिना कारण हँसना भी पागलपन की निशानी है । इस हास्य नामक नोकषाय का त्याग कर आत्मा को कषायों से मुक्त करें ।

पाप के उदय से आये हुए दुःखों को हँसते मुँह सहन करने से पाप का नाश हो जाता है और दुःखों को दूर करने के लिए रोते रहने से हमारा पाप और ज्यादा बढ़ जाता है, जो अधिक दुःखों को पैदा करनेवाला है ।

साथ ही अपने पुण्य के उदय से आये हुए सुख में लीन नहीं बनना है । यदि प्रसन्नता रखनी है, तो दुःख के समय और अन्य के सुख को देखकर रखनी है ।

संसार का मुख्य कारण जीव का जड पदार्थ के साथ राग है । ये जड़, रूपी पदार्थ, कर्म और कषाय ही अजन्मा ऐसी आत्मा को अनेक भवों में जन्म पैदा कराते है । अविनाशी आत्मा का एक भव से दूसरे भव में विनाश होता है ।

ऐसे कर्म के बंधनों को तोड़ने के लिए आत्मा में योग्यता पैदा करनी जरूरी है । जैसे साँप के मुँह में पानी की बूँद भी जहर में बदल जाती है और वही पानी की बूंद सीप के मुंह में जाती है, तो मोती के रूप में बन जाती है ।

38 'यौवन' वरदान भी ! अभिशाप भी !

जीवन की तीन अवस्थाओं में युवावस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । बाल्यावस्था में शरीर व बुद्धि दोनों अपरिपक्व होते हैं । वृद्धावस्था में बुद्धि की परिपक्वता होने पर भी व्यक्ति शारीरिक बल की क्षीणता के कारण कुछ कर-गुजरने में असमर्थ होता है ।

जीवन का महत्त्वपूर्ण सर्जन और विसर्जन युवावस्था में ही होता है ।

युवावस्था तो ऊर्जा का प्रबल स्रोत है । यदि उस ऊर्जा को इन्द्रियसंयम द्वारा नियंत्रित कर सत्कर्म के साथ जोड़ा जाय तो वह शक्ति स्व-पर के लिए वरदान रूप सिद्ध हो सकती है, और उसी शक्ति को यदि फैशन और व्यसन, हॉटल और बॉटल, व्यभिचार और अनाचार, वैभव और विलासिता के साथ जोड़ा जाय तो वह शक्ति भयंकर अभिशाप रूप बन सकती है ।

अपने यौवन को वरदान स्वरूप बनाना है या अभिशाप स्वरूप बनाना है, यह आपको सोचना है ।

युद्धभूमि में हथियारों से हजारों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना आसान है, परंतु अपने यौवन पर विजय प्राप्त करना अत्यंत कठिन है । अपने यौवन को बचाने हेतु जीवन को व्यसन और फैशन से दूर रखना होगा, क्योंकि अधिकांशतः देखते हैं कि पुरुषों का पतन व्यसनों से होता है और स्त्रियों का पतन फैशन से होता है ।

इन व्यसन और फैशन से बचाकर अपने जीवन को आध्यात्मिक प्रगति की ओर ले जाएँ जिससे देश में नहीं तो कम से कम आपके जीवन में तो रामराज्य आ सकता है ।

39

श्री पार्श्वनाथ भगवान की साधना समता भाव देती है

आत्मा की शुद्धि को प्राप्त करने के लिए समताभाव ही एक उपाय है ।

जिस प्रकार मलिन वस्त्र को पानी और साबुन द्वारा स्वच्छ किया जा सकता है । मलिन सोने को अग्नि के द्वारा स्वच्छ किया जा सकता है । मलिन पानी को कतकचूर्ण अथवा फिटकरी आदि द्वारा स्वच्छ किया जा सकता है । उसी प्रकार आत्मा की शुद्धि के लिए समता भाव ही एक मात्र उपाय है ।

जगत् में रहे जीव व जड़ पदार्थों के प्रति मन में लेश भी ममत्व भाव को धारण न करते हुए समभाव में रहना, यही आत्मा को शुद्ध बनाने का उपाय है ।

कर्म के उदय के कारण जीवन में सुख-दुःख तो आने ही वाले हैं । हर दिन और हर समय एक समान स्थिति रहनेवाली नहीं है । परंतु इन विचित्र प्रसंगों में भी मन जब समता भाव से जुड़ा रहता है, तब पूर्व किये हुए कर्मों की अपूर्व निर्जरा होती है, कर्मों का नाश होता है ।

प्रतिकूल संयोगों को पाकर मन नाराज हो जाता हो, मन आकुल-व्याकुल बन जाता हो, मन आर्त व रौद्र ध्यान से ग्रस्त बन जाता हो, तो समता भाव नष्ट हो जाता है । जिसके परिणामस्वरूप आत्मा भयंकर कर्मो का बंध करती है ।

अतः आत्मा व मन को शुद्ध करने के लिए समता भाव का अभ्यास करना चाहिए । अपने जीवन में जिन्होंने समता भाव की साधना की है, उनकी आराधना-उपासना भी हमें समता भाव प्राप्त करने में सहायक है ।

40

अत्यंत भूख, दुःख और सुख धर्म में बाधक हैं

अनंत काल से भव भ्रमण कर रही आत्मा को इस संसार में बोधि की प्राप्ति दुर्लभ है । बोधि के अभाव में की गई धर्म आराधना–साधना का विशेष फल नहीं है । बोधि की प्राप्ति के लिए मानवजन्म, आर्य देश, आर्य कुल, दीर्घ आयुष्य, पंचेन्द्रिय–पूर्णता एवं सद्धर्म का श्रवण अत्यंत दुर्लभ है ।

संसार में सभी जीवों को चार गति में विभक्त किया है, इन चार गतियों में तीन गतियों के जीवों को धर्म की प्राप्ति एवं आराधना अत्यंत दुर्लभ है ।

नरक गति में रहे जीवों को धर्म दुर्लभ है, क्योंकि वहाँ जीवों को भयंकर दुःख है । अत्यंत दुःखों के बीच में जीवात्मा को धर्म याद आना अत्यंत कठिन है ।

तिर्यंच गति में भी धर्म दुर्लभ है, क्योंकि पशु योनि में जीवों को भूख की अत्यंत पीडा होती है । पशु हमेशा भोजन की शोध में रहते हैं । धर्म याद आना शक्य ही नहीं है ।

देवताओं को भी धर्म की आराधना दुर्लभ है, क्योंकि वे सुख में अत्यंत लीन हैं ।

धर्म की प्राप्ति और आराधना करने के लिए एक मात्र मनुष्य–जन्म ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है । जो अपने संपूर्ण जीवन में धर्म की आराधना न कर सके, उनके लिए पर्व की व्यवस्था बताई है, जिसमें आषाढ़ चौमासी का सर्वाधिक महत्त्व बताया गया है । भगवान महावीर भी इस चौमासी में चार महीनों के उपवास करते थे । हमको भी इस चौमासे में विशेषाधिक आराधनाएँ करनी चाहिए ।

शुभ भावनाओं से राग-द्वेष का नाश होता है

राग और द्वेष, आत्मा के भयंकर शत्रु हैं, इनका नाश करने के लिए इनकी प्रतिपक्षी भावना में अपने मन को जोड़ना चाहिए ।

यदि जीवन में राग भाव हैरान करता हो, तो उससे बचने के लिए मन में वैराग्य भाव पुष्ट करना चाहिए । जगत् में रहे सभी बाह्य पदार्थ नाशवंत और क्षणभंगुर हैं, तो उन पर राग कैसे किया जाए ? जो पदार्थ स्वयं नष्ट हो जाने के स्वभाववाले हैं, वे पदार्थ हमें शाश्वत सुख देने में असमर्थ हैं, अतः ऐसे पदार्थो में राग करना व्यर्थ है ।

जीवन में द्वेष भाव हैरान करता हो, तो उस द्वेष का नाश करने के लिए अपनी आत्मा को मैत्रीभाव से सुवासित करो । जहाँ मैत्री भाव की सुगंध है, वहाँ द्वेष भाव टिक नहीं सकता है । वास्तव में, इस जगत् में रही एक भी आत्मा अपनी दुश्मन नहीं है । भीतर में रहे हुए राग द्वेष ही वास्तविक दुश्मन हैं । जब तक रागादि दुश्मन जीवित रहेंगे, तब तक इस संसार में हमें किसी के प्रति दुश्मनी होगी ।

जिस वस्तु या व्यक्ति के प्रति हृदय में राग होता है, उसमें रहे दोषों का चिंतन करने से राग भाव नष्ट होता है और जिस वस्तु या व्यक्ति के प्रति द्वेष होता है, उसमें रहे गुणों को देखने से द्वेष का नाश होता है ।

इस प्रकार की शुभ भावनाएँ हमारे मन को राग-द्वेष के द्वंद्व से मुक्त करने में समर्थ हैं । अतः इनका चिंतन हमेशा करना चाहिए ।

42 पात्रता का विकास जरुरी है

पात्र और अपात्र में बहुत बडा अंतर है । उपजाऊ भूमि में बोया हुआ बीज अनेक गुणा फल देता है, जबकि बंजर भूमि में बोया हुआ बीज बेकार जाता है । गाय को घास खिलाए तो उसमें से दूध पैदा होता है, जबकि सांप को दूध पिलाया जाए, तो वह जहर में ही रूपांतरित होता है ।

उसी प्रकार पात्र व्यक्ति को दिया गया थोडा भी उपदेश अनेक गुणा लाभ देता है, जबकि अपात्र को दिया गया उपदेश मात्र कलह और क्लेश का ही कारण बनता है ।

पात्र व्यक्ति ही उपदेश के योग्य है, वैसे ही पात्र व्यक्ति ही भूल बताने के योग्य है । पात्र व्यक्ति को भूल बतायेंगे तो वह अपनी भूल का स्वीकार करेगा और भूल बतानेवाले का भी आभार मानेगा, जिससे उसकी हुई भूल सुधरेगी ।

जबकि अयोग्य और अपात्र व्यक्ति को भूल बतायेंगे तो वह अपनी भूल का स्वीकार तो नहीं करेगा, बल्कि भूल बतानेवाले पर गुस्सा करेगा, जिससे उसकी भूल भी नहीं सुधरेगी और भूल बताने वाले को भी क्लेश होगा ।

जिस प्रकार कौए को आम का वृक्ष, गधे को शक्कर, सुंअर को दूधपाक तथा उल्लू को सूर्यप्रकाश पसंद नहीं आता है, उसी प्रकार अपात्र व्यक्ति को धर्म का उपदेश और भूल बताना पसंद नहीं आता है ।

जीवन में ज्ञान आदि शक्तियों की वृद्धि से भी पात्रता की वृद्धि करना अत्यधिक जरूरी है ।

उपकारी का स्मरण, अहंकार से बचाता है

किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त होने पर, मानव अहंकार से ग्रस्त हो जाता है । अहंकारी व्यक्ति दूसरों को तुच्छ समझने लगता है और अपने से हीन व्यक्तियों का तिरस्कार करने लगता है ।

अहंकार से बचने का एक सरल उपाय है, 'अपने उपकारियों का स्मरण करो !' हमें सोचना चाहिए कि आज हमने जो कुछ भी पाया है, उसे पाने के लिए कितने लोगों ने हम पर उपकार किया है ।

जिस माँ ने जन्म दिया, जिस पिता ने सहारा दिया, जिस शिक्षक ने ज्ञान दिया, पढ़ाया, लिखाया, होशियार किया, उन सभी का कितना उपकार है ! अनेक लोगों ने हमें मदद की, जिसके फलस्वरूप आज हम जो भी हैं, वह बन पाए । यदि इनका उपकार नहीं होता, तो हम भी रास्ते में रहे भिखारी की तरह दर-दर ठोकरें खाते होते ।

सोंचेंगे तो हमें पता चलेगा कि हम अनेक भव्यात्माओं के उपकार के भार तले दबे हुए हैं । सैकड़ों व्यक्तियों के उपकार के भार तले जब हम दबे हुए हैं, तो हमें अपनी शक्ति या संपत्ति का अभिमान करने का कोई अधिकार ही नहीं है !

आज हमें जो कुछ शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उन सभी शक्तियों की प्राप्ति में जिन–जिन लोगों का हम पर उपकार है, उन सभी उपकारियों के उपकार को प्रतिदिन याद करे, तो हम अहंकार के जहर से मुक्त हो सकते हैं । कृतज्ञता का गुण हमें अहंकार से बचने की प्रबल शक्ति देता है ।

धन, जीवन का साधन है, साध्य नहीं

लोकमानस में सबसे बड़ी भ्रांति है कि 'धन ही जीवन का सर्वस्व है ।' सभी लोग यही मानते हैं कि धन है, तो इज्जत है, मान-सम्मान है, धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है । परंतु 'यह सबसे बड़ी भूल है ।'

धन, जीवन का मात्र साधन है, साध्य नहीं ।

जो व्यक्ति धन को अपना साध्य बना देता है, वह व्यक्ति अपने जीवन में मानव के रूप में शायद ही जी सकता है । वास्तव में मानव के चोले में वह शैतान बने बिना नहीं रहेगा ।

धन को जीवन का साध्य बनाने वाला व्यक्ति अपने जीवन में कौन-सा निकृष्ट कार्य करने के लिए तैयार नहीं होगा ? वह हल्के से हल्का कार्य करने के लिए भी तैयार हो जाएगा । चोरी, डकैती, लूट, मिलावट, विश्वासघात एवं झूठ के पाप उसके जीवन के हिस्से बने बिना नहीं रहेंगे ।

सुख का आधार बाह्य संपत्ति और वैभव नहीं है । यदि बाह्य संपत्ति की वृद्धि से ही सुखानुभूति होती हो, तब तो जितने भी धनवान व्यक्ति हैं, वे सब सुखी होते, परंतु जगत् में अधिकांश धनवान व्यक्ति भीतर से दुःखी नजर आते हैं । उनके इर्द-गिर्द समाधान नहीं किंतु समस्याओं के जाले बुने हुए दिखाई पड़ते हैं, अतः धन में सुख की मान्यता सर्वथा गलत है ।

सुखी होने के लिए जीवन में संतोष गुण अपनाकर, धन को जीवन का साधन मानकर, धर्म को साध्य बनाना चाहिए ।

शक्ति के साथ अंकुश भी जरुरी है

किसी भी प्रकार के शक्तिशाली पदार्थ पर अंकुश न हो तो वह पदार्थ लाभ के बदले भयंकर विनाश का ही कारण बनता है । सभी प्रकार के जड़ यंत्रों पर भी अंकुश जरुरी है । नदी की तबाही से बचने हेतु बाँध, बाँधा जाता है, तो छोटे–से–छोटे वाहन से लेकर बड़े–से–बड़े वायुयान पर भी नियंत्रण अवश्य होता है । बिजली से चलने वाले सभी साधनों पर भी स्वीच से नियंत्रण रखा जाता है ।

जड़ पदार्थों के साथ चेतन शक्ति पर भी नियंत्रण जरूरी है । हाथी पर अंकुश चाहिए, घोड़े पर लगाम चाहिए ।

कुत्ते आदि पालतू जानवर को भी पट्टे से बाँधा जाता है, तो मदारी भी साँप को पिटारे में बँद रखता है । सर्कस में काम आने वाले सिंह को भी पिंजरे में रखा जाता है ।

मानव भी शक्तिशाली प्राणी है, अतः उस पर भी नियंत्रण जरूरी है । बालक पर माता-पिता का अंकुश जरूरी है, विद्यार्थी पर शिक्षक का नियंत्रण जरूरी है । पुरुष पर भी माता-पिता, ज्येष्ठ बंधु व सद्गुरु का नियंत्रण जरूरी होता है ।

बस, इसी प्रकार स्त्री पर भी अंकुश जरूरी है । आर्य देश में स्त्री को गुलाम बनाने की बात नहीं है बल्कि स्त्री को भी पूर्ण सम्मान व योग्य अधिकार दिए गए हैं । आर्य संस्कृति में स्त्री को घर कहा है । घर की सारी जवाबदारी स्त्री को सौंपी गई है । संतान के पालन-पोषण, संस्करण एवं पति, श्वसुर आदि के भोजन व सत्कार आदि की सभी जवाबदारी स्त्री के कंधों पर है ।

परंतु दुर्भाग्य कि आज पश्चिम के अंधानुकरण से स्त्री-पुरुष के अधिकारों व कार्यक्षेत्र की मर्यादाओं को जानबूझकर तोड़ा जा रहा है । जिसके कारण स्त्री का सच्चा आभूषण-शील-सदाचार असुरक्षित हो गया है ।

धर्म में उत्साह फल की वृद्धि करता है

धर्म का फल सुख है और अधर्म का फल दुःख है, इस बात में कहीं कोई मतभेद नहीं है । विश्व के सभी धर्म, इस बात को बिना किसी मतभेद से स्वीकार करते हैं ।

आश्चर्य इस बात का है कि इतना समझने पर भी जगत् के सारे जीव अधर्म की प्रवृत्ति बड़ी मस्ती करते हैं । पाप करते हुए कोई खेद नहीं होता है । परंतु जब धर्म की बात आती है, तब उसमें खेद, आलस और नीरसता का अनुभव करते हैं ।

परलोक से निरपेक्ष बना व्यक्ति इस बात को भूल जाता है कि जितने उत्साह और उल्लास के साथ पाप की प्रवृत्ति होती है, उस पाप का फल उतना ही तीव्र हो जाता है । वास्तव में धर्म-प्रवृत्ति उत्साह और उल्लास से करनी चाहिए, जिससे पुण्य का फल तीव्र हो जाए ।

जब तक शरीर स्वस्थ है, शरीर में रोग, वृद्धावस्था या इन्द्रियों की हानि नहीं हुई है, तब तक जीवन में उत्साह से धर्म की आराधना कर लेनी चाहिए ।

एक बार शरीर शिथिल हो जाने के बाद मन भी शिथिल हो जाता है, अतः जब तक शरीर स्वस्थ हैं, तब तक उत्साहपूर्वक धर्म आराधना कर अपने जीवन को सफल बना देना चाहिए । मानव भव की प्राप्ति बार बार नहीं होती है अतः समझदारी इसी में है कि आए हुए अवसर को साथ ले ।

मरण का स्मरण हमें पापों से बचाता है

चार गति रूप संसार में देव और नरक गति हमारे लिए परोक्ष है, परंतु तिर्यच और मनुष्य गति के जीव प्रत्यक्ष हैं । इन जीवों में भी विविध प्रकार के भेद रहे हुए हैं । बुद्धि, देह, धन और वाणी रुप चार शक्तियों के कारण मनुष्य पशु से ऊँचा गिना जाता है ।

मानव को मिली बुद्धि का सदुपयोग, शुभ विचारों से हो सकता है । पशु अपने वर्तमान को ही देखता है, परंतु मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से मात्र वर्तमान ही नहीं, परंतु अपने भविष्य और अपने परलोक को भी सुधार सकता है ।

मानव ही सद्धर्म की आराधना कर सकता है, त्याग–तपश्चर्या कर सकता है, तो प्राप्त हुई धन–संपत्ति का मनुष्य ही अन्य को दान देकर पुण्य कमा सकता है ।

मानव की सबसे बड़ी शक्ति है, उसकी वाणी । मानव अपने मन में रहे भावों को वचन से व्यक्त कर सकता है । मीठे वचनों से दो टूटे दिलों को जोड़ सकता है ।

इन चार शक्तियों का सच्चा उपयोग मानव तभी कर सकता है, जब उसकी नजर परलोक पर हो । मरण का स्मरण हमें अनेक पापकर्मों से बचाकर सदाचार के मार्ग पर ले जा सकता है ।

जो व्यक्ति मौत को हमेशा याद रखता है । 'यह दुनिया छोडकर एक दिन मुझे भी यहां से अकेले चला जाना हैं ।' जो याद रखता है, वह अपने जीवन में अनेकविध पापों से बच सकता है ।

48 जिनवाणी-श्रवण को सफल करें

भगवान महावीर ने केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद जगत् के सभी जीवों के कल्याण के लिए प्रतिदिन 2 प्रहर अर्थात् 6 घटों तक धर्मदेशना दी है । संसार के बंधनों से मुक्त करनेवाली और मोक्ष के मार्ग का निर्देश करनेवाली परमात्मा की वाणी को गणधर भगवंत सूत्र के रूप में रचना करते हैं ।

तत्पश्चात्, विशिष्ट ज्ञानी महापुरूष उन सूत्रों पर पयन्ना, चूर्णि, भाष्य और टीका प्रकरण ग्रंथों की रचना करते हैं ।

जिस प्रकार 'पानी' पीने से शरीर की तृषा शांत होती है, ताप से मुक्ति होती है और शरीर की पुष्टि होती है, उसी प्रकार जिनवाणी के पान से आत्मा की तृषा का नाश होता है, कर्मों के ताप से मुक्ति मिलती है और गुणों की पुष्टि होती है ।

जिनवाणी के श्रवण से प्राप्त ज्ञान का जीवन में आचरण करने में ही सच्ची सफलता है ।

49 ''तप'' आत्मा के कर्मों को तपाता हैं

आग में तपाने से सोना अपने मैल को जलाता है और अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है । उसी प्रकार तप धर्म रूपी अग्नि में अपनी आत्मा को तपाने से आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करती है ।

आत्मा पर लगे निकाचित कर्मों को जलाकर नष्ट करने की ताकत तप धर्म में है ।

तीर्थंकर भगवान के द्वारा निर्दिष्ट तप धर्म के बारह प्रकार हैं । उन्होंने मात्र तप धर्म बताया ही नहीं है, परंतु अपने जीवन में आचरण में भी लाया था ।

भगवान महावीर ने पूर्व के तीसरे भव में 11,80,645 बार मासक्षमण तप एवं अंतिम भव में 12½ वर्ष तक घोरातिघोर तप धर्म का आचरण किया था ।

50

रूप और रुपये से होनेवाले संबंध चिरंजीवी नहीं होते

मात्र रूप और रुपये के आधार पर होनेवाले संबंध चिरंजीवी नहीं होते हैं । मानव, बचपन से लेकर पूरे जीवन में अनेकविध संबंधों के जाल बाँधता है, परंतु अधिकांश संबंध टूट जाते हैं ।

जहाँ स्वभाव की समानता होती है, वहीं संबंध टिक सकता है और चिरंजीवी भी रहता है ।

जड़ पदार्थों के साथ हमारा संबंध न बन सकता है, न ही टिक सकता है । आप धन संपत्ति, बंगला, गाड़ी आदि को अपना मानते हैं, वह सामग्री जड़ होने से आपको अपना नहीं मानती । ''यह मकान मेरा है'' ऐसा अधिकार आप रखते हैं, लेकिन जड़ ऐसा मकान कभी नहीं कहता है कि ''यह मालिक मेरा है ।''

जीवित व्यक्तियों से जुडे संबंध तथा धन संपत्ति और सुंदर रूप के आकर्षण से बंधे संबंध भी जिंदगी भर नहीं टिकते हैं ।

शिखर पर रही चपल ध्वजा की भाँति अत्यंत धन–संपत्ति और रूप चंचल है, अतः इनके नष्ट होने पर संबंध भी नष्ट हो जाता है । अतः नश्वर साधनों से संबंध बाँधने की मेहनत छोड़कर आत्मा के हितैषी के साथ संबंध जोड़ना चाहिए ।

51 वैराग्य की प्राप्ति दुष्कर है

वैराग्य के बाद त्याग अत्यंत आसान है । हृदय में आसक्ति हो तो थोड़ा भी त्याग कठिन हो जाता है ।

बाह्य–पदार्थों के त्याग के साथ यदि हृदय में रही आसक्ति का त्याग हो तो उस त्याग का कोई अर्थ नहीं है ।

त्याग और वैराग्य में, वैराग्य की प्राप्ति दुष्कर है । हृदय में वैराग्य भाव आ जाय तो छह खंड के विशाल साम्राज्य का त्याग भी आसान हो जाता है और वैराग्य भाव न हो तो मुट्ठी भर दाने का त्याग भी कठिन हो जाता है ।

सच्चा साधक वही कहलाता है जो बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का सद्भाव पूर्वक त्याग करता है । यह त्याग तीव्र वैराग्यभाव के बिना संभव नहीं है ।

शरीर में डायाबिटीज् हो तो व्यक्ति मिठाई छोड देता है । शरीर में B.P. या हार्ट की तकलीफ हो तो व्यक्ति घी छोड देता है । परन्तु उस त्याग का कोई विशेष मूल्य नहीं है क्योंकि वह त्याग इच्छापूर्वक नहीं है । इसी प्रकार बलात्कार से किए गए धन का त्याग भी वास्तव में त्याग नहीं है ।

धन की मूर्च्छा दूर करने की भावना से दिया गया दान ही वास्तविक त्याग कहलाता है ।

संसार के सुखों के प्रति वैराग्य भाव ही सम्यक्त्व का बीज है । इसलिए प्रार्थना सूत्र के माध्यम से प्रभु समक्ष सर्वप्रथम प्रार्थना 'भव निर्वेद' की की जाती है ।

काम-वासना को जीतना अत्यंत कठिन है

पाँच इन्द्रियों के विषयसुखों की आसक्ति आत्मा को दुर्गति में ले जाने का मार्ग है तो पाँच इन्द्रियों के विषय–सुखों की विरक्ति और उन सुखों का त्याग, शाश्वत सुख का राजमार्ग है ।

सुखी बनना चाहते हो तो विषयों की आसक्ति का त्याग करना चाहिए ।

विषयसुखों में मग्न बनकर आज तक कोई सुखी नहीं हो पाया है । हाथी के दाँतों को तोड़ना आसान है, जंगली सिंह को खत्म करना आसान है, जहरीले सांप को वश कर लेना आसान है, परंतु काम–वासना को जीतना कठिन है ।

काम के सेवन से कामवासना शांत नहीं होती है, बल्कि और ज्यादा बढ़ती है । आग में घी डालने से आग और अधिक उत्तेजित होती है, उसी प्रकार काम के सेवन से कामवासना बढ़ती है, अतः काम को जीतने के लिए काम का त्याग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है ।

जिस प्रकार दिन की शोभा सूर्य से और रात्रि की शोभा चंद्र से है, उसी प्रकार सती और यति (साधु) की शोभा शील–पालन से है ।

शील से भ्रष्ट बना साधु भी साधु नहीं है । अतः संयम जीवन में भी ब्रह्मचर्य व्रत के पालन व रक्षण के लिए खूब भार दिया गया है ।

इस व्रत का पालन आत्मा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देता है और इस व्रत का भंग आत्मा को भयंकर पतन के गर्त में डूबा देता है ।

आत्मोत्थान के लिए प्रयत्नशील बनो

अपने आत्मधन को खा जानेवाला प्रमाद, यह आत्मा का सबसे भयंकर शत्रु है ।

प्रमाद यह हमारे जीवन के अमूल्य समय को खा जाता है । प्रभु वीर का संदेश है– 'उठो, जागो, यह सोने का समय नहीं है, प्रमाद की निद्रा का त्याग कर आत्म–उत्थान के लिए प्रयत्नशील बनो ।

यद्यपि देवलोक में रहे देवता पंचेन्द्रिय हैं, मन वाले हैं, परन्तु वहाँ भौतिक सुख की सामग्री अपरंपार है, उन सुखों में मुग्ध बने देवताओं के लिए धर्म की आराधना अशक्य है । देवलोक में देवताओं को रहा अतिसुख साधनामार्ग में आगे बढ़ने नहीं देता है ।

तिर्यंचगति में उन पशुओं को रही अति भूख की पीड़ा और पराधीनता धर्म–आराधना में बाधक है । मानव–भव में देव–भव जितना भौतिक सुख नहीं है । मानव–भव में नरक की भाँति भयंकर दुःख नहीं है । मानव–भव में तिर्यंच की तरह भूख एवं नासमझी भी नहीं है । अतः मनुष्य–भव में धर्म–आराधना आसानी से हो सकती है ।

भूतकाल में अपनी आत्मा का अधिकांश समय तिर्यंच गति में व्यतीत हुआ है । तिर्यंच गति में भी अधिकांश समय एकेन्द्रिय में ही व्यतीत हुआ है । एकेन्द्रिय में भी अधिकांश समय वनस्पतिकाय में ही व्यतीत हुआ है और वनस्पतिकाय में भी अधिकांश समय साधारण वनस्पतिकाय अर्थात् निगोद में ही व्यतीत हुआ है । प्रमाद में बहुत समय गया हैं, अब जगने का समय है ।

54

सुख में लीन और दुःख में दीन नहीं बनता सम्यग्दृष्टि

अठारह दोषों से मुक्त जो वीतराग हैं, वे शुद्ध देव हैं । जो पाँच महाव्रतों के धारक हैं, वे शुद्ध सद्गुरु हैं । तथा केवलज्ञानी के द्वारा प्ररूपित जो धर्म है, वह शुद्ध धर्म है । ऐसे शुद्ध देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा करना, उसी का नाम सम्यग्दर्शन है ।

इस अनादि अनंत संसार में आत्मा को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अत्यंत दुष्कर है । सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद आत्मा की अंतरंग परिणति बदल जाती है । परिस्थितिवश बाह्य आचरण कुछ भी हो, परंतु सम्यग् दर्शन के अस्तित्व में आत्मा की अंतरंग परिणति कुछ और ही होती है ।

सम्यग्दर्शन से युक्त आत्मा, संसार के भौतिक सुखों में लीन नहीं बनती है तो दुःख के प्रसंगों में दीन नहीं बनती है ।

कीचड़ में पैदा हुआ कमल जल से बढ़ता है परंतु उन दोनों से निर्लेप रहता है । उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा संसार में रहते हुए भी, संसार के सुख भोगते हुए भी जलकमलवत् उन सुखों से अलिप्त रहती है ।

भौतिक सुखों को प्राप्त कर जो आत्मा उन सुखों में अत्यंत ही आसक्त बनती है । वह आत्मा भयंकर पाप कर्मों का बंधकर इस संसार में भटकती है ।

55

अहिंसा से भी सम्यग्ज्ञान का महत्त्व ज्यादा है

आगम सिद्धांत में कहा है– कि ज्ञान और अहिंसा में सर्वप्रथम ज्ञान का महत्त्व है । उसके बाद अहिंसा को स्थान दिया गया है । क्योंकि ज्ञान के बल से ही जीव और अजीव आदि तत्त्वों का बोध होगा, जिससे व्यवहार में शुद्धि आयेगी । ऐसे ज्ञान को धारण करने वाले ज्ञानी भी ज्ञान के समान पूजनीय हैं ।

''ज्ञान'' यह आत्मा का मूल स्वभाव है । ज्ञान को स्व-पर प्रकाशक कहा है । जिस प्रकार दीपक के प्रकाश से अन्य पदार्थ देखे जा सकते है, तो स्वयं दीपक भी देखा जा सकता है । दीपक के समान ज्ञान भी स्व-पर-प्रकाशक माना गया है ।

ज्ञान की आराधना के प्रभाव से आत्मा निर्मल ज्ञान प्राप्त करती है और ज्ञान की विराधना से अज्ञान के अंधकार में ही गोते खाती है ।

आज जगत् में जितना ज्ञान बढ़ा है, उसके साथ ज्ञान की आशातनाएँ भी बढ़ी हैं । खाते-खाते, झूठे मुँह टी.वी. आदि देखा जाता है, अखबार पढ़ा जाता है । लिखे हुए कपड़े पहने जाते हैं, अखबार आदि कागजों से मल मूत्र आदि स्वच्छ किये जाते हैं । इसके फल–स्वरूप आत्मा ज्ञानावरणीय कर्मबंध करके दुर्गति के गर्त में डूब जाती है ।

सम्यग्ज्ञान से ही जीवों के स्वरूप का बोध होता है । जीव-अजीव के भेद को समझनेवाला ही जीवन में अहिंसा धर्म की सच्ची आराधना कर सकता है । जिसे जीव तत्त्व का सही बोध नहीं हैं, वह हिंसा-अहिंसा का विवेक कैसे पाएगा ?

मुक्ति का लोहचुंबक है परमात्म भक्ति

परमात्मा की भक्ति तो वह लोहचुंबक है जो मुक्ति को खींचकर अपने समीप ले आती है ।

हमारे आत्मविकास में सर्वाधिक उपकार पंच परमेष्ठि–भगवंतों का है, उनमें भी सबसे बड़ा उपकार अरिंहतों का है, जिनकी भक्ति करने के लिए ही परमात्मा की प्रतिमा का आलंबन लिया जाता है ।

नास्तिक के मन परमात्मा की प्रतिमा मात्र पत्थर स्वरूप है,

शिल्पी के मन एक मूर्ति स्वरूप है, परंतु एक भक्त के मन तो साक्षात् परमात्म-स्वरूप है ।

अपने मूल्यवान द्रव्यों से और भक्ति के भावों से की हुई अल्प भक्ति भी इसलोक के सभी सुख एवं शाश्वत सुख रूप मोक्ष देने में समर्थ है ।

आगम शास्त्रों में कहा है - सर्वथा दोषरहित जिनेश्वर भगवंत की जो त्रिसंध्या पूजा करता है, वह जीव तीसरे भव में अथवा आठवें भव में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है ।

परमात्मा अनंत गुणों के भंडार हैं, उनकी भक्ति से हमारी आत्मा भी गुणवान बनती है ।

साक्षात् प्रभु के विरह में प्रभु-प्रतिमा ही हमारे लिए परम आधार हैं, अतः उनकी भक्ति में कमी नहीं रखनी चाहिए ।

मन की आँख से करो परमात्मा के दर्शन

जब तन की आँख खुलती है, तब दुनियाँ दिखती है और जब मन की आँख खुलती है, तब भीतर में रहे परमात्म-स्वरूप हमारी शुद्ध आत्मा दिखती है ।

''परमात्मा'' हमारी आत्मा का ही शुद्ध स्वरूप है, परंतु कर्मो की अधीनता के कारण अपनी आत्मा कर्मों से मलिन बनी है । आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानने के लिए हमें साक्षात् तीर्थंकरों के दर्शन तो नहीं हो सकते, परंतु परमात्मा की प्रतिमा में हम साक्षात् तीर्थंकर की कल्पना कर करते हैं ।

पत्थर की बनी प्रतिमा में वास्तविक भगवान की कल्पना करके उनकी भक्ति से हमें भगवान की भक्ति का ही लाभ होता है । तो प्रतिमा की आशातना और विराधना से हमें भगवान की आशातना का दोष लगता है ।

हमारे मन में पैदा होने वाले अच्छे-बुरे भावों का मुख्य कारण हमारी आँखें हैं । आँख से दिखनेवाले शुभ पदार्थों को देखने से हमारे मन में शुभ-भाव आते हैं, और अशुभ पदार्थों को देखने से हमारे मन में बुरे भाव आये बिना नहीं रहते हैं ।

मन में शुभ भावों को लाने के लिए हमें प्रतिदिन कम–से–कम तीन बार परमात्मा के दर्शन–वंदन करने चाहिए ।

प्रभु के दर्शन से हमारे अशुभ कर्मों का नाश होता है–उत्कृष्ट पुण्य कर्म का बंध होता है । आनेवाले सभी विघ्न दूर हो जाते है और मन प्रसन्नता से भर जाता है ।

जीवन में देव और गुरु का स्थान सर्वोपरि हो

भाड़े के मकान को छोड़ने के बाद उसके साथ हमारे संबंध भी छूट जाते है, उस मकान का कुछ भी हो, हमें उससे कोई लेना-देना नहीं रहता, वैसे ही सारे नाते-रिश्ते, दुकान-मकान, गाड़ी-बंगला, यावत् हमारा शरीर भी भाड़े के मकान समान हैं। मृत्यु होने के बाद इन सभी वस्तुओं के साथ हमारा कोई संबंध नहीं रहता है। सारे नाते-रिश्ते, गाड़ी-बंगला आदि के ऊपर अपना हक समाप्त हो जाता है।

यह शरीर राख का ढेर बन जाता है। परंतु इस नाशवंत शरीर के लिए किये गए पाप हमारे साथ, अन्य भवों में भी साथ चलते हैं।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हम त्याग भी करते हैं, परंतु आत्मा को स्वच्छ बनाने के लिए देव-गुरु की आज्ञा को नहीं मानते हैं। परंतु जो त्याग हम देव-गुरु की आज्ञा से नहीं करते, वही त्याग हमें डॉक्टरों की आज्ञा से करना पड़ता है।

डॉक्टर की आज्ञा मानना, त्याग नहीं मजबूरी है। सच्चा त्याग वही है जो देव गुरु की आज्ञा के स्वीकार से हो। देव और गुरु का स्थान हमारे जीवन में सर्वोपरि होना चाहिए।

जिसने अपने जीवन में देव-गुरु को सर्वोपरि स्थान दिया हैं, उसने इस जीवन में प्राप्त करने योग्य सब कुछ प्राप्त कर लिया हैं और जिसने देव-गुरु को ही अपना जीवन समर्पित नहीं किया है, उसने बहुत कुछ पाने पर भी अपना जीवन हार दिया है।

संबंधों में समय देना भी जरुरी है

मात्र वस्तु के आदान-प्रदान से प्रेम के संबंध नहीं टिकते हैं, उन संबंधों को टिकाने के लिए समय और स्नेह का दान भी जरूरी है ।

विभक्त परिवारों में जिन बच्चों को बचपन में प्रेम नहीं मिला होता है, वे बच्चे बड़े होकर अपने वृद्ध बने माता-पिता को सिर्फ सामग्री प्रदान करते हैं, उन्हें जो चीज चाहिए, वह वस्तु नौकर द्वारा मंगवाकर दिला देते हैं, परंतु वृद्धावस्था में शारीरिक दृष्टि से अशक्त बने हुए और कामकाज से निवृत्त हुए अपने माता-पिता के पास आकर बैठने की उन्हें फुर्सत नहीं होती है ।

जिस प्रकार बालक को माँ-बाप के प्रेम की भूख होती है, उसी प्रकार वृद्धावस्था में रहे माता-पिता को पुत्र के प्रेम की भूख होती है । वह भूख जब संतुष्ट नहीं होती है तो कई बार उन्हें आत्महत्या के विचार भी आ जाते हैं अथवा प्रार्थना करते हैं, 'हे भगवान ! तू मुझे जल्दी उठा ले ।'

ये परिस्थितियाँ आज समाज में फैल रही हैं । मात्र धनप्राप्ति के पीछे पागल बने लोगों को अपने बच्चे और माँ-बाप भी याद नहीं आते हैं । परिणामतः जीवन में सब कुछ होने पर भी प्रेम के बिना सब बेकार बन जाता है ।

जीवन में धन ही सब कुछ नहीं है । जीवन में धन को सर्वोपरि माननेवाले 'प्रेम' की महत्ता को समझ नहीं पाते है ।

पंचम काल में दुर्लभ होगा धर्माचरण

भगवान महावीर के निर्वाण के कुछ समय बाद शुरू हुए दुषम नाम के पाँचवें आरे में क्रोध, मान, माया और लोभ आदि चार कषायों की प्रबलता होगी । धीरे–धीरे लोगों की अहिंसावृत्ति गायब होती जाएगी और लोग हिंसाप्रेमी बनेंगे । ऐसी स्थिति में गांव श्मशान की भाँति शून्य हो जाएंगे । राजा व सत्ताधीश भी खूब लोभी होंगे ।

सर्वत्र मत्स्य गलागल न्याय फैल जाएगा अर्थात् बलवान व्यक्ति अपने से कमजोर को हैरान करनेवाला होगा । अधिकांश लोग अपने स्वार्थ को सिद्ध करने में तत्पर रहेंगे । लोग धर्म के कार्य में मंद मतिवाले होंगे । धर्मकार्यों में माया-कपट बढ़ जाएगा । मंत्र, मणि, औषधि आदि का प्रभाव घट जाएगा ।

ऐसी परिस्थिति में सद्धर्मी आत्मा को दुर्जन हैरान करेंगे, जिससे धर्म का पालन कठिन होगा । फिर भी जो आत्माएँ धर्म के मार्ग में दृढ़ बनेगी वह अपनी आत्मा का उद्धार करने में सक्षम रहेंगी ।

अपना मन, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव से अवश्य प्रभावित होता है ।

शुभ द्रव्य–क्षेत्र आदि का योग हो तो मन में शुभ भाव पैदा होता है और अशुभ द्रव्य आदि का योग होगा तो अशुभ भाव पैदा हुए बिना नहीं रहेगा ।

पंचमकाल के प्रभाव से पाप प्रवृत्तियाँ बढती जा रही है, अतः अपनी आत्मा उसमें लिप्त न हो जाय, इस हेतु खूब सावधानी जरुरी है ।

61

आत्मा के भाव-संसार का नाश करे वह ''मंगल''

नूतन वर्ष के मंगल प्रभात में परमकृपालु परमात्मा से हम मंगलमय वर्ष की प्रार्थना करते हैं । हम सभी को अपना जीवन मंगलमय बने इसकी चाहना है । *'मंगल' शब्द का वास्तविक अर्थ है आत्मा में रहे भाव-संसार का नाश करे, वह 'मंगल' ।*

संसार में आत्मा को जन्म लेना पड़ता है, संसार में आत्मा को मरना पड़ता है, साथ ही संसार में आत्मा को जरा अवस्था की पीड़ा भुगतनी पड़ती है । इतना ही नहीं, यह संसार आधि-व्याधि और उपाधियों से भरा हुआ है । इन सभी दुःखों का मूल कारण आत्मा में रहा भाव-संसार है ।

भाव संसार अर्थात् राग और द्वेष की परिणति । यदि आत्मा राग द्वेष रूपी भाव-संसार से मुक्त हो जाय, तो बाहर के सभी दुःखों से मुक्ति खूब आसान है ।

नूतन वर्ष के मंगल प्रभात में गौतम स्वामी ने राग-द्वेष को नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया था । उनका नाम ही मंगल को पैदा कराता है । उनके नाम–स्मरण से हमारे जीवन में भी परम मंगल की प्राप्ति हो, यही शुभाभिलाषा ।

जिसका प्रारंभ अच्छा होता है, उसका अंत भी अच्छा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है ।

नूतनवर्ष के मंगल प्रभात में यस संकल्प करे कि हम अपने मन को अशुभ भावनाओं से भावित होने नहीं देंगे–हम अपनी वाणी से असत्य बात नहीं करेंगें और अपनी काया को भी अशुभ प्रवृत्तियों से अवश्य बचाएंगें ।

जिनवचन श्रवण में विनय जरूरी

जैसे-तैसे बैठकर और अविधि पूर्वक जिनवाणी का श्रवण करना और आदर पूर्वक जिनवाणी का श्रवण करना, इन दोनों में काफी अंतर है ।

मात्र जिनवाणी का श्रवण पर्याप्त नहीं है, उस जिनवाणी के प्रति हृदय में आदरभाव भी जरूरी है । हृदय में आदर भाव न हो तो वह श्रवण भी आत्मा के लिए लाभदायी सिद्ध नहीं हो सकता है । हृदय मे पूर्ण अहोभाव, आदर-बहुमान भाव होगा, तो थोडे भी जिनवचन का श्रवण विशेष लाभ का कारण बन सकेगा ।

महावीर भगवान के प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी, भगवान की वाणी का श्रवण अत्यंत विनयपूर्वक, जिज्ञासा वृत्ति से करते थे । ज्ञानी होते हुए भी इतना अधिक विनय था, तो हम तो अज्ञान से भरे हैं, हमें विशेष रूप से विनय करते हुए जिनवाणी का श्रवण करना चाहिए ।

जिनवचनों को श्रवण कर, उनमें उठती विभिन्न शंकाओं का समाधान करना, उन्हें बार–बार याद करते हुए पुनरावर्तन करना, उन पर मनन करना और सुनी हुई बातों को अन्य तक पहुँचाना, ये जिनवचन–श्रवण के पाँच अलंकार हैं ।

गुरु भगवंत के मुख से जिनवाणी श्रवण के पूर्व गुरुवंदन अनिवार्य है । विनय से प्राप्त किया श्रवण लाभ का कारण बनता है । अविनय से ग्रहण की गई विद्या भी लाभ के बदले नुकसान का काम करती है ।

सुसंस्कार ही मनुष्य और पशु का भेद करता है

आहार-निद्रा-भय और मैथुन की दृष्टि से मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं है, परंतु सद्आचरण के कारण मनुष्य, पशु से भिन्न माना जाता है ।

वह मनुष्य भी पशु समान है, जिसके जीवन में सुसंस्कारों की सुगंध नहीं है ।

अपनी संतान के जीवन को सुसंस्कारित करने की सबसे बड़ी जिम्मेदारी माँ-बाप की है । जब से संतान माँ के गर्भ में आती है, तब से ही माँ के आचरण के अनुसार गर्भ के शुभ-अशुभ संस्कारों का सिंचन शुरू हो जाता है ।

वर्तमान में होनेवाले संस्कारों के ह्रास(नाश) को बचाने हेतु माँ-बाप को अपना जीवन संस्कारमय बनाना जरूरी है ।

जीवन की उन्नति के लिए दुर्गुणों को देखने में अंधा, दुर्वचनों को बोलने में मूक और निंदा सुनने में बहरा बनना चाहिए । परधन को पत्थर समान, परस्त्री को माता के समान एवं समस्त जीवों को स्व समान मानने से हमारा जीवन उज्ज्वल बनता है ।

अनगढ पत्थर किसी का सिर भी फोड सकता है तो शिल्पी के हाथ में रहा पत्थर जगत् पूज्य प्रभु-प्रतिमा का रुप भी धारण कर सकता है ।

जिसका जीवन संस्कारित हैं, वह मानव के चोले मैं भी देव कहलाता है और जिसका जीवन संस्कारित नहीं हैं, उसका जीवन पशु से भी बदतर बन जाता हैं, जिसके आचरण को देख पशु भी शर्मिंदा हो जाते है ।

श्रावक जीवन की दीक्षा है 'बारह व्रत'

अनंतज्ञानी परमात्मा ने मानव–जीवन की सफलता के लिए रत्नत्रय की संपूर्ण आराधना रूप चारित्र–जीवन ही सर्वश्रेष्ठ बताया है, परंतु जो आत्माएँ शारीरिक अशक्ति अथवा विषयों की आसक्ति के कारण पापों के सर्वथा त्याग-रूप संयम जीवन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं, वे कम–से–कम श्रावक–जीवन के अलंकार स्वरूप सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों को अवश्य स्वीकार कर सकती हैं ।

श्रावक अर्थात् संसार रूपी सरोवर में जलकमल की तरह अनासक्त भाव से जीवन जीनेवाला ।

जिस प्रकार कमल कीचड़ में पैदा होता है, जल से बढ़ता है, फिर भी वह कमल, कीचड़ और जल से अलिप्त रहता है । इसी प्रकार जिसे मोक्ष पाने की तीव्र अभिलाषा हो, ऐसा श्रावक संसार में पैदा होने पर भी अपने आपको संसार से अलिप्त रखता है ।

श्रावक, साधु की तरह सर्वथा पापों से मुक्त तो नहीं बन सकता, परंतु पापों से डरकर, उन पापों में अल्पविराम तो जरूर लगा सकता है ।

वीतराग जिसके आराध्य देव हैं, निर्ग्रंथ मुनि जिसके गुरु हैं और वीतराग निर्दिष्ट दयामय धर्म से जो युक्त हैं, ऐसे श्रावक धर्म की कौन प्रशंसा नहीं करेगा ?

श्रावक धर्म का पालन भी आत्मा को भविष्य में सर्वविरति धर्म प्रदान करने में सक्षम है ।

कर्म के रोगों का नाश करती है विरति की आराधना

जैसे क्षय रोग (टी.बी.) का दर्दी हमेशा यही चाहता है कि मैं इस रोग से सर्वथा मुक्त बन जाऊँ, और इसी उद्देश्य से वह डॉक्टर के द्वारा निर्दिष्ट छह-बारह महीने तक दवाई का कोर्स पूरा करता है । रोगमुक्ति की तीव्र इच्छा होने पर भी जैसे दवा द्वारा उसका रोग प्रतिदिन घटता जाता है, इसी प्रकार आत्मा को कर्मों का क्षय रोग (टी.बी.) लगा हुआ है । आत्मा का पूर्ण आरोग्य मोक्ष में है और उसे पाने के लिए विरति धर्म के पालन रूपी दवाई का कोर्स करना ही एक मात्र उपाय है ।

जितने अंश में हम विरति धर्म का पालन करते जाएंगे, उतने अंश में हम कर्म के रोग से मुक्त होते जाएंगे । जिसके फलस्वरूप हम क्रमशः कर्मरोग से संपूर्णतया मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे ।

मन, वचन और काया से सभी पापों का त्याग करना सर्व विरति है, जो साधुओं को होती है ।

सर्वविरति से उसी भव में भी आत्मा कर्मों का क्षय कर सकती हैं, जब कि देश विरति धर्म की आराधना से आत्मा अल्प भवों में भव के बंधन से मुक्त बनती है ।

66

आज्ञा पालक ही सुविनीत शिष्य कहलाता है

प्रव्रज्या–ग्रहण के बाद मिथ्याभिमानी हरिभद्र का कायाकल्प हो गया । उनके जीवन में से मिथ्याभिमान पलायन कर गया, अब वे अत्यन्त विनम्र, सुशील और तपस्वी महात्मा बन गये । गुरु–शुश्रूषा, शास्त्र अध्ययन और अंतरंग साधना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया । उन्होंने जैनागमों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया । जैनागम की विशालता और विराटता का अनुभव कर वे बोल उठे–''हाँ ! हम अनाथ हो जाते, यदि हमें जिनागम की प्राप्ति न होती ।''

''जो गुरु की आज्ञा के अनुसार प्रवृत्ति करता है, जो गुरु के दृष्टिपथ में रहता है और जो गुरु के इशारे मात्र को समझकर उसके अनुसार प्रवृत्ति करता है, वह सुविनीत शिष्य कहलाता है ।''

''जो गुरु की आज्ञा की अवज्ञा–हीलना करता है, आज्ञा के भय से जो गुरु से बहुत दूर बैठता है । जो गुरु के दोष देखता है तथा जो तत्त्व का ज्ञाता नहीं है, वह अविनीत कहलाता है ।

जो अविनीत होता है, वह 'कुलवालक' मुनि की तरह चारित्र से भ्रष्ट होकर दुर्गतिगामी होता है ।

विनीत शिष्य को शांत होना चाहिए अर्थात् क्रोध नहीं करना चाहिए । सुविनीत साधु कभी वाचाल नहीं होता है अर्थात् निष्कारण बकवास नहीं करता है । गुरु के द्वारा कठोर अनुशासन करने पर भी वह क्रोध नहीं करता है । नहीं पूछने पर मौन रहता है और पूछने पर व्यवस्थित जवाब देता है ।

प्रमाद ही आत्मा का भयंकर शत्रु है

भगवान महावीर परमात्मा ने आयुष्य की क्षणभंगुरता बतलाकर एक समय के लिए भी प्रमाद नहीं करने की सुंदर प्रेरणा दी है ।

घास के अग्र भाग पर रही ओस की बुंद कुछ समय के लिए ठहरती है, फिर नष्ट हो जाती है । बस, ओस के उस जलबुंद की तरह यह मानव–जीवन है, अतः हे गौतम ! इस जीवन में एक समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

ड्राइवर की एक क्षण की भूल अनेक को मौत के घाट उतार देती है । सीढ़ियों से ऊपर चढ़नेवाला थोड़ी सी भूल करता है, तो उसे नीचे गिरना पड़ता है । रेस के मैदान में दौड़नेवाला क्षण भर रुक जाता है और रेस हार जाता है ।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में किया गया प्रमाद नुकसान का ही कारण बनता है, परन्तु उससे होनेवाला नुकसान नगण्य कहलाता है । लेकिन आत्मा प्रमाद के वशीभूत होकर एक क्षण के लिए भी आर्त, रौद्र ध्यान कर ले तो उसे दुर्गति में ही जाना पड़ता है ।

आत्मा का प्रमाद बहुत भयंकर है, अतः जीवन की क्षणभंगुरता को नजर समक्ष रखकर सदैव अप्रमत्त रहने की कोशिश करनी चाहिए । वृक्ष पर रहे सूखे पत्ते को गिरते कितनी देर लगती है ? अतः बिल्कुल प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

विवेकी व्यक्ति ही प्रमाद का त्याग कर सकता है । जो विवेकी होता है, वह बहुश्रुत होता है ।

कुछ आत्माएँ सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म स्वीकार करती हैं और सिंहवृत्ति से ही चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

कुछ आत्माएँ सियालवृत्ति से चारित्र धर्म स्वीकार करती हैं और सियालवृत्ति से ही चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

कुछ सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म को स्वीकार करती हैं और सियालवृत्ति से चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

कुछ सियालवृत्ति से चारित्र धर्म स्वीकार करती हैं और सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

अपने पापों की स्वयं आलोचना करे

जगत् के सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव होना चाहिए ।

जगत् में जितने गुणवान व सुखी प्राणी हैं, उनके प्रति प्रमोद भाव होना चाहिए ।

जगत् में जितने भी दुःखी प्राणी हैं, उनके प्रति करुणा भाव होना चाहिए ।

जगत् में जितनी पापी आत्माएँ हैं, जिनको उपदेश देना भी साँप को दूध पिलाने की तरह निरर्थक है, ऐसी पापी आत्माओं के प्रति माध्यस्थ भाव होना चाहिए ।

इस लोक और परलोक में मोह व अज्ञानतावश जिन दुष्कृतों का आचरण किया हो, उन सब की निंदा करनी चाहिए ।

गर्हा व निंदा तिरस्कार स्वरूप है, जिस वस्तु की हम निंदा करते हैं, वह वस्तु हमसे दूर होती है । सुकृतों की अथवा सुकृत का आचरण करनेवालों की निंदा करने से हम सुकृत–मुक्त बनते हैं और दुष्कृतों की निंदा व गर्हा करने से हम दुष्कृतमुक्त बनते हैं ।

सुकृतों की निंदा करने से पुण्य का क्षय होता है और दुष्कृतों की निंदा–गर्हा करने से पाप का क्षय होता है । संसारी आत्मा के भूतकाल के इतिहास पर थोड़ा–सा विहंगावलोकन किया जाय तो स्पष्ट पता चलेगा कि इस आत्मा ने पापाचरण अत्यधिक किया है और धर्माराधना नहींवत् की है । जो भी पाप किये हैं, वे हँसते–हँसते और खूब उत्साहपूर्वक किये हैं, जबकि जब भी धर्म किया है, वह भी अल्प प्रमाण में अनिच्छा से या स्वार्थ की भावना से किया है ।

69 औदारिक शरीर की रचना

'कषाय की अधीनता के नीचे मैं दबा हुआ हूँ', यह समझ में आए, तो ही हमें संसार भयंकर लगेगा । विज्ञान के साधनों ने हमारे शरीर को कमजोर बनाया, चलना बंद करवा कर Vehicles के अधीन बनाया । दिमाग को कमजोर बनाया, सारे calculations आदि Mobile के आधार पर होते हैं । सारी याद रखने की बातें सिर्फ Mobiles में save करते हैं । इन्सान को निकम्मा बनाया Robots ने । Company वाले Mobile के साथ पाप भी Free बाँटते हैं ।

दुनिया में अच्छी चीज देखने के बाद उसे पाने के लिए इच्छा होती है, परन्तु संसार के प्रति मोह इतना ज्यादा है कि संयमी को देखकर संयम पाने की इच्छा नहीं होती है ।

जीवन जैसे एक साधना है, तो मरना भी साधना है । आज तक अनंत भवों में हमने बालमरण खूब किये हैं । 'देह के नाश के साथ आत्मा का भी नाश हो जाता है ।' ऐसा मानना बालमरण है । आत्मा संसार में शरीर के बिना नहीं रह सकती है । तैजस और कार्मण शरीर हमेशा साथ हैं । परन्तु इन शरीरों को हम देख नहीं सकते, इनसे कोई व्यवहार नहीं होता ।

देव–नरक में वैक्रिय शरीर और मनुष्य–तिर्यंच में औदारिक शरीर होता हैं । औदारिक शरीर खूब उदार है, जल्दी परिवर्तन होता है । बिगड़ता भी जल्दी है और सुधरता भी जल्दी है । पोषण मिले तो पुष्ट होगा और न मिले तो कृश होगा । उपघात भी औदारिक देह का ही होता है । अकालमृत्यु भी औदारिक देहधारी की ही होती है ।

प्रशस्त राग से अप्रशस्त राग को तोड़ें

वीतराग परमात्मा को छोड़कर संसार में रही सभी आत्माओं में राग भाव अवश्य होता है । धर्मी आत्माओं में प्रशस्त राग होता है । उस राग के पात्र देव, गुरु, धर्म और शासन के विविध अंग होते हैं ।

यह प्रशस्त राग आत्मा को वीतराग भाव की ओर ले जाता है । अधर्मी आत्माओं में सदैव अप्रशस्त राग होता है और उस राग के पात्र देह, धन, कुटुंब और अन्य सांसारिक पदार्थ होते हैं । यह राग मोहाधीन संसारी आत्माओं में कूट–कूट कर भरा होता है । राग के पात्र या राग का निमित्त मिलते ही यह राग–भाव जागृत हो जाता है ।

अप्रशस्त राग भाव को जड़मूल से उखाड़ने के लिए जीवन में प्रशस्त राग भाव पैदा करना चाहिए ।

अप्रशस्त राग भाव को तोड़ने और प्रशस्त राग–भाव को पैदा करने के लिए ही जैन शासन में परमात्म–भक्ति, गुरु–भक्ति और साधर्मिक भक्ति के विविध अनुष्ठान बतलाए हैं ।

परमात्म भक्ति आदि अनुष्ठानों के सेवन से हमारा प्रशस्त राग दृढ़ बनता है और अप्रशस्त राग का बंधन टूटता है ।

अप्रशस्त राग को तोड़ने का श्रेष्ठ साधन प्रशस्त राग का सेवन है, ज्यों–ज्यों जीवन में परमात्म–भक्ति, सद्गुरु की भक्ति बढ़ती जाएगी, त्यों–त्यों पाँच इन्द्रियों का विषय–राग भी स्वाभाविक रूप से घटता जाएगा ।

प्रशस्त राग से अप्रशस्त राग टूटता है ।

हर व्यक्ति आगम पढ़ने का अधिकारी नहीं !

व्यवहार में हम देखते हैं कि हर किसी डॉक्टर को ऑपरेशन अधिकार नहीं मिल जाता है । उसके लिए योग्यता स्वरूप डिग्री चाहिए ।

हर किसी व्यक्ति को गाड़ी, ट्रेन या प्लेन चलाने का अधिकार नहीं मिल जाता है, उसके लिए योग्यता स्वरूप लाइसेंस चाहिए ।

हर कोई व्यक्ति हथियार नहीं रख सकता है, उसके लिए भी योग्यता व लाइसेंस चाहिए ।

बस, इसी प्रकार वीतराग प्रभु के मुख से निकले हुए इस श्रुत को पढ़ने का अधिकार हर किसी को नहीं मिल जाता है ।

जिन–आगम को 'गणि पिटक' कहा जाता है । यहाँ गणि का अर्थ आचार्य है और पिटक का अर्थ पेटी है । अर्थात् ये आगम आचार्यों की मालिकी के हैं । इनका अध्ययन योग्यता प्राप्त, योगोद्वहन किए हुए साधु भगवंत ही करते हैं । जब किसी साधु में योग्यता विकसित होती है, तब आचार्य भगवन्त उन्हें उन–उन सूत्रों के योगोद्वहन कराते हैं । इस योगोद्वहन की साधना द्वारा गुरु भगवंत उन्हें वे–वे सूत्र पढ़ने व पढ़ाने का अधिकार देते हैं ।

हर कोई व्यक्ति या गृहस्थ इन आगमों को पढ़ने का अधिकारी नहीं है । आग यदि योग्य व्यक्ति के हाथ में है तो रसोई पकाने का काम करती है अन्यथा वही आग मौत का कारण बन जाती है ।

72 संसार अनन्त दुःखों से भरा है

इस जगत् में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं । परन्तु इनमें से अर्थ और काम तो नाम से ही पुरुषार्थ हैं, परमार्थ से तो वे अनर्थकारी हैं । परमार्थ सिर्फ मोक्ष ही है और धर्म उसका कारण है ।

यह धर्म संयम आदि दस प्रकार का बतलाया गया है । आत्मा को इस भवसागर से पार उतारने में वह पूर्णतया सक्षम है ।

चतुर्गति रूप यह संसार अनंत दुःखों से भरा हुआ है । राग-द्वेष से आत्मा कर्मों का बंध करती है और उन कर्मों के उदय से आत्मा इस चौदह राजलोक रूप संसार में जहाँ–तहाँ भटकती है ।

इस संसार से विरुद्ध मोक्ष है, जो अनंत सुखमय है । इस संसार के बंधन से छूटने और शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करने का एक मात्र उपाय धर्म ही है ।

जिस प्रकार मार्ग में रहा कमजोर व्यक्ति भी धीरे–धीरे आगे बढ़ता हुआ अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँच जाता है और उन्मार्ग में रहा हुआ शक्तिशाली व्यक्ति भी ज्यों–ज्यों दौड़ता जाता है, त्यों–त्यों अपने लक्ष्य स्थल से दूर–सुदूर होता जाता है, बस, इसी प्रकार जो आत्मा वीतराग प्ररूपित मोक्षमार्ग का आश्रय करती है, वह इस भव में नहीं तो अल्पभवों में अवश्य मोक्ष प्राप्त करती है ।

महान् पुण्य के उदय से देव दुर्लभ ऐसा मानव भव प्राप्त हुआ है तो इस जीवन में संयम की ही आराधना करने जैसी है, जिस आराधना के फल स्वरुप आत्मा सदाकाल के लिए कर्म के बंधन से मुक्त होकर अजरामर मोक्ष पद प्राप्त कर सकती है ।

73 गुणवान ही परम सुखी है

जो आत्माएँ गुणवान हैं, वे ही परम सुखी हैं ।

सुखी बनने के लिए सरकार ने नारा दिया है–''छोटा परिवार, सुखी परिवार'' परंतु संसार में न तो 'छोटा परिवार' वाला सुखी है और नही बड़े परिवारवाला । जैन शासन में सुखी बनने के लिए गुणवान बनने का उपाय बताया है । जो गुणवान है, उसे प्रतिकूलता का द्वेष नहीं है और अनुकूलता का राग नहीं है । ऐसे वीतराग ही सच्चे सुखी हैं ।

गुणवान बनने के लिए, जो गुणवान बन चुके हैं अथवा, जो गुणवान बनने के लिए संसार का त्याग कर चुके हैं, उनका हृदय कमल में ध्यान करना चाहिए । उनकी पूजा, सेवा, सत्कार आदि करना चाहिए ।

अरिहंत परमात्मा ने अपने समस्त दोषों का नाश कर अपने आत्मिक गुणों को प्रकट किया है । इतना ही नहीं, जगत् के सभी जीवों को आत्मिक गुणों को प्रकट करने के लिए धर्मशासन की स्थापना की है ।

सामान्य रूप से उपकार तो हर कोई व्यक्ति कर सकता है, परंतु संसार के सारे उपकार, अल्पकालीन हैं । चिरस्थायी उपकार तो अरिहंत परमात्मा का है, जो धर्मशासन की स्थापना करके जगत् के सभी जीवों को शाश्वत सुखी बनने का मार्ग बतलाते हैं ।

अरिहंतादि नवपदों की आराधना करने से आत्मा स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करती है ।

विषय-सुख का भोग विष से भी भयंकर है

सुगंधित और सुंदर किंपाकफल खाने पर तृप्ति एवं आनंद देता है, परंतु परिणाम में मौत ही देता है । उसी प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय क्षण भर के लिए सुख देते हैं, परंतु परिणाम तो अत्यंत दुःखदायी है ।

विष के समान अत्यंत भयंकर पाँच इन्द्रियों के विषयों का संपूर्ण त्याग करना ही श्रेष्ठ है । परंतु जिसका मनोबल इतना मजबूत नहीं है, उसे परस्त्री का त्याग तो करना ही चाहिए ।

आर्य संस्कृति में लग्न जीवन की व्यवस्था का मुख्य कारण अपनी मैथुन सेवन की इच्छा को परिमित बनाना है । जीवन को सदाचारमय बनाने के लिए ही श्रावक जीवन के चौथे व्रत में परस्त्रीगमन और वेश्यागमन का त्याग एवं स्वस्त्री में संतोष रखने का नियम बताया है ।

काम का आवेग अति भयंकर है । काम के विषय में अंधा बना व्यक्ति, विवेक को भूल जाता है । विवेक रूपी चक्षु पर आवरण आने पर व्यक्ति अपना हिताहित भूल जाता है, जिसके फलस्वरुप उसे पछताना पड़ता है ।

विष और विषय में मात्र एक अक्षर का ही फर्क है, परंतु उनके परिणाम में बहुत बडा अंतर है । विष तो एक ही जीवन का अंत लाता हैं, जबकि ये विषय तो आत्मा को दीर्घकाल तक संसार में भटकाते है, अतः विष से भी खतरनाक ऐसे विषयों से सदैव दूर रहना चाहिए ।

चार 'म' कार त्याग करने योग्य हैं

श्रावक जीवन के 7 वें व्रत में भोजन संबंधी विवेक बताया गया है । जिसमें विशेष करके 4 महाविगई रूप- मांस-मदिरा-मधु और मक्खन त्याग करने योग्य हैं ।

मांस की प्राप्ति के लिए पंचेन्द्रिय प्राणी की हत्या करनी पड़ती है । वनस्पति से प्राप्त होने वाले भोजन में अल्प हिंसा है, जबकि मांस में होने वाली हिंसा भयंकर है । पशु की हत्या करने के लिए मानव को अत्यंत क्रूर बनना पड़ता है, जिस कारण आत्मा भयंकर कर्मों का बंध करती है ।

मदिरा :– मदिरा के नशे में व्यक्ति अपने हित-अहित को नहीं जान सकता है । मदिरा में असंख्य बेइन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है ।

मधु को पाने के लिए मधु के छत्ते के नीचे आग जलाई जाती है, जिससे अनेक मधुमक्खियाँ बेमौत मरती हैं । मधु भी मधुमक्खियों के मुँह की लार है, जो तुच्छ एवं जीवमिश्रित है अतः त्याग करने योग्य है ।

मक्खन जब छाछ में से बाहर निकलता है, तब उसमें असंख्य बेइन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं अतः मक्खन भी त्याग करने योग्य है ।

इन चार महाविगइयों का सेवन करने से आत्मा दुर्गतिगामी बनती है । अतः दुर्गति से बचना है तो अपने जीवन में इन चार महाविगइयों का अवश्य त्याग करना चाहिए ।

त्याग की अभिलाषा अत्यंत जरूरी है

एक गरीब व्यक्ति के दिल में भी अमीर बनने की तीव्र अभिलाषा होती हे, उसी प्रकार जिसे जैनधर्म की प्राप्ति हुई हो, उसके हृदय में हमेशा संयम ग्रहण करने की अभिलाषा होनी चाहिए ।

शरीर की अशक्ति एवं भौतिक विषयों की आसक्ति के कारण त्याग न हो सके, तो भी मन में त्याग की भावना एवं अभिलाषा तो अवश्य होनी चाहिए ।

जिसे मोक्ष पाने की इच्छा हो, उसे सर्वप्रथम जिनेश्वर भगवंत की आज्ञाओं के प्रति तीव्र बहुमान भाव होना चाहिए । आज्ञापालन के लिए कायिक शक्ति आदि की अपेक्षा रहती है, जबकि आज्ञाबहुमान तो मन का विषय है । आज्ञा-पालन के साथ यदि मन में आज्ञाबहुमान का भाव न हो तो उस पालन का भी कोई अर्थ नहीं है । अतः आज्ञापालन के साथ आज्ञाबहुमान अत्यंत आवश्यक है ।

जिन-जिन आत्माओं ने स्वार्थ के वशीभूत होकर अज्ञानता व मोह के जाल में फँसकर जिनाज्ञाओं की उपेक्षा की अथवा उनसे विपरीत वर्तन किया, उन आत्माओं का घोर पतन हुआ है ।

जो जिनाज्ञा के महत्त्व को समझता है, वही व्यक्ति, उन आज्ञाओं के प्रति आदरवाला बन सकता है, परंतु जिन्हें जिनेश्वर की आज्ञाओं की महत्ता का ख्याल नहीं हैं, उन आत्माओं के दिल में उन आज्ञाओं के प्रति आदर-भाव पैदा नहीं हो सकता । जिनेश्वर की आज्ञा को जानने के लिए हमारे पास एक मात्र जिनाज्ञानुसारी जिनवाणी का श्रवण अत्यत जरूरी है ।

77 शुभ विचारों से शुभ आचरण होता है

पानी का कोई रंग नहीं होता, परंतु उसमें मिलाए रंग के अनुसार वह पानी रंगीन बन जाता है, उसी प्रकार हमारा मन भी सभी प्रकार के भावों से निर्लेप है। आँख के सामने आने वाला दृश्य, हमारे मन को अवश्य प्रभावित करता है ।

अच्छे दृश्यों से मन शुभ भावों से भावित होता है, तो बूरे दृश्यों से मन में हिंसक एवं विकार भाव अवश्य पैदा होते हैं।

मन को शुभ भावना से भावित बनाने के लिए परमात्मा की प्रतिमा, सर्वश्रेष्ठ आलंबन है । भगवान के दर्शन में मन को जोडने के लिए परमात्मा के जीवन की अवस्थाओं का चिंतन करना चाहिए ।

परमात्मा के जन्म समय करोड़ों देवता मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक करते हैं । जन्म के साथ ही इतना मान-सम्मान मिलने पर भी भगवान के मन में लेश मात्र भी अभिमान पैदा नहीं होता । उनकी अपेक्षा हमें मिलने वाला मान-सम्मान तो अंश मात्र भी नहीं है, तो फिर हम अभिमान कैसे करे ?

परमात्मा की दीक्षा के बाद, उन पर अनेक प्रकार से दैविक और मनुष्य संबधी उपसर्ग हुए, जिन्हें परमात्मा ने समतापूर्वक सहन किया था। कर्म के उदय में भगवान ने जो समता भाव रखा, वह हमें भी अनुसरणीय है। केवलज्ञान के बाद, सभी जीवों के उद्धार हेतु प्रतिदिन परमात्मा दो प्रहर तक धर्मदेशना देते हैं, जिससे अनेक जीव धर्मबोध को प्राप्त करते हैं। जगत् में रहे सभी जीवों के मन में आने वाले शुभ भावों का मुख्य कारण परमात्मा की धर्मदेशना है।

मन में आए शुभ भाव ही, हमारे जीवन में शुभ आचार को लाते हैं, अतः शुभ भावों को लाने हेतु शुभ चिंतन जरूरी है ।

'जैन' धर्म है-कोई जाति नहीं

'जैन' 'धर्म' है, कोई जाति नहीं है ।

किसी भी जाति में पैदा हुआ व्यक्ति जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा बताई आचार संहिता का पालन करे एवं जिनेश्वर परमात्मा के जैसा बनने का लक्ष्य रखे, वह व्यक्ति सच्चा जैन है ।

भूतकाल में अन्य जाति में पैदा हुए अनेक ऐसे महापुरुष जैन धर्म को प्राप्त हुए हैं ।

भगवान महावीर के सभी गणधर, जन्म से ब्राह्मण थें । बाद में भी पैदा हुए अनेक महापुरुष, जन्म से अजैन थे ।

प्रतिदिन आरती एवं पुष्पपूजा में जिस महापुरुष को याद करते हैं, ऐसे कुमारपाल राजा भी जन्म से अजैन थे । जैन धर्म की प्राप्ति के बाद परमात्मा से प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं, ''यदि एक ओर मुझे छह खंड का साम्राज्य और चक्रवर्ती पद प्राप्त होता हो परंतु जैनधर्म की प्राप्ति न होती हो, तथा दूसरी ओर मुझे गरीब के घर में भी जैनधर्म प्राप्त होता हो, तो गरीब के रूप में जैनधर्म में जन्म प्राप्त करना पसंद करूंगा ।''

जन्म से जैनधर्म नहीं प्राप्त होने पर भी उनके जीवन में जैनधर्म के प्रति अटूट प्रेम था ।

---

150 वर्षों तक हम पर राज्य करके अंग्रेजों ने हमारी पूरी सोच, विचारधारा एवं रहन–सहन में परिवर्तन ला दिया है । भौतिकता के सुख–साधनों को देकर उन्होंने हमारे धर्म शास्त्रों को हमसे दूर कर दिया है । परंतु सत्य तो यह है कि आज विज्ञान के सभी संशोधनों का मूल केन्द्र हमारे धर्मशास्त्र हैं ।

79

माता-पिता का कर्तव्य, संस्कार-दान से पूर्ण होता है

माता–पिता का कर्त्तव्य सिर्फ जन्म और जीवन से नहीं, बल्कि संस्कारदान से पूर्ण होता है ।

जन्म देने की स्थिति में मनुष्य और पशु–पंखी में विशेष भेद नहीं है । परंतु जीवनदान की स्थिति में पशु–पंखी और मनुष्यों में थोड़ा भेद है । प्रायः करके पशु–पक्षियों का संबंध मात्र माता के साथ है, पिता की पहिचान तो होती ही नहीं है ।

जन्मदात्री कुत्तिया अपने पिल्ले को पालती है । जन्मे हुए पिल्ले को स्तनपान कराती है । उसकी सुरक्षा का पूरा प्रबंध करती है, परंतु जैसे ही वह पिल्ला अपने बलबूते पर चलने लगता है, वह अपनी माता को भी भूल जाता है । अपने पूरे जीवन में वह अपनी माँ को कभी याद नहीं करता है ।

पक्षियों का जन्म अण्डों से होता है । मात्र अण्डा देने से उनका जन्म नहीं होता, परंतु माँ उस पर बैठकर अपनी गर्मी से उसका सेवन करती है । समय बीतने पर उसमें से नवजात पक्षी बाहर आता है । उसके बाद वह दूर–सुदूर से दाना चुगकर मुँह में पीसकर उसकी चोंच में डालकर उसका पालन–पोषण करती है । परंतु जैसे ही पंखी को पंख प्राप्त हो जाते हैं, वह उड़ जाता है । बाद में उसका उसकी माँ से कोई संबंध नहीं रहता है ।

पशु–पक्षी और मनुष्यों में सबसे बडा भेद है, जीवन जीने की विचारशैली । पशु–पक्षी का विचार मात्र वर्तमानलक्षी है, जबकि मनुष्य के पास भविष्य का विचार करने की शक्ति है ।

मनुष्य ऐसा प्राणी है, जो मात्र वर्तमान का ही नहीं परंतु इस जन्म और पुनर्जन्म का भी विचार कर सकता है और इसलिए उसे अपने जीवन एवं परलोक को सुधारने के लिए संस्कारों की परम आवश्यकता रहती है ।

वेशभूषा के नाम पर अश्लीलता न पहनें

शरीर के संरक्षण और मर्यादा के पालन के लिए वेशभूषा है, परंतु वह वेशभूषा अपने कुल, जाति और आर्थिक स्थिति के अनुरूप होनी चाहिए । वेशभूषा व्यक्ति के जीवन का परिचय कराती है । आर्थिक स्थिति सामान्य हो और बादशाही वेश पहने तो लोगों में संशय पैदा होता है । इसी तरह स्वयं धनाढ्य हो और सामान्य वेश पहने तो भी लोक में निंदा होती है ।

वर्तमान समय में वेशभूषा के नाम पर समाज में उद्‌भटता बढ़ रही है । स्त्रियों के लिए वेशभूषा, शील-संरक्षण का साधन है, जबकि आज फैशन के नाम पर वेश पहनने पर भी अंगों का प्रदर्शन ही होता है ।

आज का युवावर्ग फैशन के पीछे इतना पागलसा बन गया है कि वह वेशभूषा के संबंध में अपनी बुद्धि का लेश भी उपयोग नहीं करता है । कोई वेश आरोग्य की दृष्टि से हानिकारक हो अथवा मौसम के प्रतिकूल हो, परंतु फिल्मी एक्टर ने वह पहिन ली हो तो उसका सभी युवा अनुकरण करने लग जाते हैं ।

किसी ने ठीक ही कहां है, ``We are wearing nakedness on our clothes.''

व्यक्ति कपडे पहनकर भी नंगेपन का प्रदर्शन कर रहा है ।

चारित्र पतन का मुख्य कारण फैशन ही है । वेष की मर्यादा व्यक्ति तो पतन के गर्त से बचाती है ।

81 आँख होने पर भी कामी अंध है

आँखों के अभाव में व्यक्ति को अंध कहना, सामान्य बात है परन्तु आँख होते हुए भी कामी व्यक्ति को अंधा कहा गया है । कामवासना की आसक्ति से विवेक चक्षु पर आवरण आ जाता है ।

उल्लू को दिन में कुछ भी दिखाई नहीं देता है, आकाश में सूर्य का उदय होता है और उल्लू अंधा हो जाता है ।

कौए को दिन में दिखता है, लेकिन रात्रि में कुछ भी दिखाई नहीं देता है ।

लेकिन आश्चर्य है कि कामांध व्यक्ति को न तो दिन में दिखाई देता है और न ही रात में ।

जन्म से अंधेपन से भी काम का अंधत्व अधिक खतरनाक है । अपने भविष्य का विचार करने में कामांध व्यक्ति की दृष्टि लुप्त होती है ।

कामांध व्यक्ति परिणामदर्शी के बजाय वर्तमानदर्शी होता है । भूखे कुत्ते को विष–मिश्रित मोदक में मधुरता के दर्शन होते है, विष के परिणाम की ओर उसकी नजर नहीं जाती है, उसी प्रकार कामांध व्यक्ति को विषय के उपभोग में सुख ही नजर आता है, उस विषय के भोग से भविष्य में होनेवाली दुर्गति के कटु–विपाक नजर नहीं आते है ।

सीता के रुप में पागल बने रावण को मरकर तीसरी नरक में जाना पडा !

कामांधता के कारण रावण का यह भव बिगडा और परभव भी बिगडा ।

कामांधता से बचने के लिए आंख पर संयम खूब जरुरी है ।

आहार से बदलते है विचार

यदि तुम्हें संसार से भय लगा हो और मुक्ति पाने की इच्छा जगी हो तो सर्वप्रथम इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

इन इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय सबसे अधिक बलवान है । इसको वश में रखना अत्यंत दुष्कर है । जो रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करता है, उसके लिए अन्य इन्द्रियों को जीतना सरल हो जाता है ।

आहार की प्रकृति के अनुसार मनुष्य के विचार बदलते हैं । सात्त्विक आहार से शरीर पुष्ट बनता है, मानसिक संतुलन बराबर रहता है और जीवन भी सात्त्विक बनता है ।

तामसिक आहार से शरीर को नुकसान होता है । साथ में तामसी प्रकृति बढ़ती है ।

तामसी आहार से मनुष्य का हृदय क्रूर बनता है, उसके हृदय में कठोरता आती है । वह हिंसक व निर्दयी बनता है ।

राजसी आहार से मनुष्य के मन में काम वासना पैदा होती है । उसका जीवन विलासी बनता है ।

जबकि सात्त्विक आहार से जीवन में संयम आता है ।

मादक व उत्तेजक पदार्थों के भक्षण से वासना तीव्र बनती है और इन्द्रियाँ उच्छृंखल हो जाती हैं । अतः सर्वप्रथमः इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए रसना पर विजय प्राप्त करना चाहिए ।

पर स्त्री में मातृत्व भाव रखें

पेट की भूख शांत हो जाती है, परन्तु रसनेन्द्रिय कभी तृप्त नहीं होती । क्षुधा–तृप्ति के बाद भी रसना का गुलाम खाये बिना नहीं रहता । अधिकांश रोगों का मूल आहार की अधिकता है और आहार की अधिकता का मूल है रसनेन्द्रिय की गुलामी ।

इन्द्रियों का स्वभाव पवन की भाँति अति चंचल है अतः उनको वश करने के लिए उन्हें शुभ प्रवृत्ति में जोड़े रखना चाहिए । श्रवणेन्द्रिय को वश में रखने के लिए उसे सदा आत्म– हितकर उपदेश–श्रवण में लगाना चाहिए ।

अपने पास कान हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ भी सुनने में आवे, वह सब सुना जाय । चारों ओर दुर्जनों का प्रभाव होने से उनके संग और श्रवण से अपने में भी दुर्जनता पैदा हो जाती है, अतः कानों से सद्गुरु आदि का आत्महितकर वचन ही सुनना चाहिए ।

चक्षु इन्द्रिय की गुलामी के कारण सिनेमा, टी.वी., वीडियों का प्रचार दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । सिनेमा के पर्दे पर आये अभिनेता–अभिनेत्रियों के रूप तथा फैशन से आकर्षित होकर आज के युवा वर्ग ने अपने जीवन को बर्बाद कर लिया है । जिस संस्कृति में 'पर–नारी' में मातृत्व भाव रखने का आदेश है, उसी देश में आज मनोरंजन के नाम पर सिनेमा के माध्यम से पर–नारी के रूप को घूर घूर कर देखा जा रहा है, दिखाया जा रहा है ।

इस दृष्टि दोष के पाप से व्यक्ति का सर्व प्रथम मानसिक अधः पतन होता है और उसके बाद शारीरिक पतन भी हुए बिना रहता नहीं है ।

84 हिंसा के पाप से वैरभाव बढता है

जो व्यक्ति दूसरे प्राणियों की हिंसा करता है, दूसरों के द्वारा हिंसा कराता है अथवा हिंसा करने वाले की अनुमोदना करता है, वह अपने वैरभाव को ही बढ़ाता है ।

किसी भी जीव की हिंसा करने में कुछ भी लाभ नहीं होता है । दूसरे जीवों के मन-वचन और काया के योगों को ठेस पहुँचाने से उन जीवों को शारीरिक और मानसिक दुःख होता है । उस दुःख से हिंसक व्यक्ति को नवीन कर्मबंध होता है । जब वह कर्म उदय में आता है, तब विविध प्रकार की पीड़ाएँ सहन करनी पड़ती हैं ।

आज के न्यायालय तो मात्र काया से गुनाह करनेवालों को ही सजा देते हैं, और वह भी जब कानून से उसका गुनाह सिद्ध हो जाए तभी देते हैं । यदि कानून की दृष्टि से गुनहेगार का गुनाह सिद्ध न हो तो आज के न्यायालय भी उन्हें सजा नहीं देते हैं । परंतु जगत् में सर्वोपरि कर्मसत्ता तो ऐसी है जो जीवात्मा को मन, वचन और काया से होने वाले तथा करण, करावण और अनुमोदन से होने वाले सभी गुनाहों की अवश्य सजा देती है ।

नौ प्रकार से होने वाले इन पापों में सर्वाधिक पाप मन से होते है । मन से होने वाले पाप को रोकना अत्यंत कठिन है । परंतु इनसे बचने के लिए जीवात्मा को स्वतः ही प्रयत्न करना चाहिए । किसी जीव की हिंसा कर हम अपना ही दुश्मन खड़ा करते हैं । क्योंकि जिसकी हम हिंसा करेंगे, उसके दिल में हमारे प्रति वैर की वृत्ति पैदा होगी ही । अतः अपने जीवन में हिंसा के त्याग के लिए सतत प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

नाशवंत पदार्थों से शाश्वत सुख नहीं

रोगी व्यक्ति को जब अपना रोग अखरता है और आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा होती है, तभी वह इलाज के लिए तैयार होता है । उसे इलाज कराने डॉक्टर की शरण स्वीकार करनी पडती है । उसी प्रकार जिस जीवात्मा को सांसारिक सुख और दुःख से कंटाला पैदा हुआ हो और इनसे मुक्त होने की इच्छा पैदा हुई हो तभी उसे धर्म की कठिन आराधना पसंद पड़ती है । उसके लिए धर्म ही एक शरण है ।

जगत् के सभी बाह्य पदार्थ नाशवंत और क्षणभंगुर हैं । जो स्वयं नाशवंत हैं वे हमें शाश्वत सुख कैसे दे सकते हैं ? अतः जीवात्मा को संसार में शाश्वत सुख की प्राप्ति अशक्य है ।

शाश्वत सुख की खोज में बाह्य पदार्थों की अपेक्षा रखनेवाली आत्मा एक मात्र दुःख को ही प्राप्त करती है । इन दुःखों की परंपरा का विच्छेद करना हो तो बाह्य पदार्थों के संग का त्याग आवश्यक है ।

आत्मा ज्यों–ज्यों बाह्य संग से मुक्त होती है, त्यों–त्यों वह वास्तविक सुख का अनुभव करती है । बाह्य संग के त्याग के साथ आत्मा के भीतर रही आसक्ति का त्याग भी जरूरी है । आसक्ति के त्याग बिना, किए गए बाह्य संग के त्याग का कोई महत्त्व नहीं है ।

बाहर के बंधनों को तोड़ने से भी सबसे कठिन है ममता के बंधन को तोड़ना । ममता का बंधन टूटे तो किसी भी वस्तु का त्याग करना आसान बन जाता है ।

जो आत्मा विरक्तिपूर्वक सर्वसंग का त्याग करती है, वह आत्मा अल्प काल में ही कर्मों के जटिल बंधनों को तोड़कर परम सुख प्राप्त कर लेती है ।

86 उपधान-आराधना का उद्देश्य

अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा को मानव–जन्म की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है । देव–दुर्लभ ऐसे मानव–जन्म की प्राप्ति के बाद देव–गुरु और धर्म की सामग्री प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है ।

हम सब भाग्यशाली हैं कि हमें देव–गुरु और धर्म की सामग्री के साथ मानव–जन्म की प्राप्ति हुई है ।

इस मानव–जन्म की सफलता संयम धर्म की आराधना–साधना में ही है, परन्तु संयम अंगीकार करने के लिए जिसके पास इतना मनोबल नहीं है अथवा संयमपालन के लिए जो शारीरिक दृष्टि से कमजोर है, उन आत्माओं के उद्धार के लिए तारक परमात्मा ने श्रावक धर्म बतलाया है ।

श्रावकधर्म के उचित सम्यग्ज्ञान की उपासना के लिए, नवकार आदि सूत्रों के अधिकारी बनने के लिए उपधान तप बहुत जरूरी है । उपधान तप की आराधना करने वाले भाग्यशाली है, पुण्यशाली है ।

उपधान के बाद जिस माला का परिधान होता हैं, उसे मोक्षमाला कहते है । मोक्षमाला अर्थात् मुक्ति रुपी कन्या को वरने की वरमाला ।

उपधान तप की विधिपूर्वक आराधना करनेवाली आत्मा अल्पभवों में ही भव के बंधन से मुक्त होकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करती है ।

87 धर्म का मूल मैत्री भाव है

जब तक एक भी जीवात्मा के प्रति आत्मा में द्वेष भाव रहा होगा, तब तक आत्मा का मोक्ष संभव नहीं है अर्थात् एक जीव के प्रति रहा द्वेष–भाव भी हमारे भावी मोक्ष को स्थगित करने में सक्षम है ।

जीवों के प्रति रहा द्वेष भाव हमारे समाधि भाव को खंडित कर देता है...अतः समाधि के इच्छुक व्यक्ति को अपने जीवन में समस्त जीवों के प्रति रहे वैर भाव को विसर्जित कर मैत्री का संबंध स्थापित करना चाहिए ।

धर्म का मूल मैत्री है । मूल के अभाव में वृक्ष का अस्तित्व संभव नहीं है । उसी प्रकार मैत्री के अभाव में जीवन में धर्म का अस्तित्व संभव नहीं है । मैत्री की नींव पर ही जीवन में सद्धर्म की स्थापना हो सकती है ।

मैत्री की परिभाषा है–'परहितचिन्ता मैत्री' । दूसरे के हित का विचार करना मैत्री भावना है । यह मैत्री भावना जगत् के समस्त जीवों के प्रति होनी चाहिए । एक भी जीवात्मा के प्रति अहित का विचार करने से हमारी मैत्रीभावना खंडित हो जाती है और मन संक्लेशग्रस्त बन जाता है । अतः मन की शुद्धि के लिए सर्व जीवविषयक मैत्री भाव को अपने जीवन में जीवंत रखना चाहिए ।

मृत्यु की वेला में विशेषकर अपने मन को मैत्री भावना से भावित करना चाहिए ।

जीवन में समाधि की प्राप्ति के लिए मैत्री भावना श्रेष्ठ अमृत समान है ।

जिनवाणी-श्रवण से पत्थर हृदय भी फूल बनता है

जैन शासन में आषाढ़ी चातुर्मास का अत्यधिक महत्त्व है। साधु-साध्वी के लिए भी इस चातुर्मास दरम्यान विहार निषिद्ध होने से उनकी एक ही गाँव-नगर में स्थिरता रहती है। आषाढ़ी चातुर्मास में वर्षाकाल होने से चारों ओर जीवोत्पत्ति अत्यधिक बढ़ जाती है, अतः इन दिनों में विशेष धर्म–आराधना करनी चाहिए।

साधु-साध्वी की भाँति श्रावक–श्राविकाओं को भी वर्षाकाल में एक ही नगर में रहना चाहिए। गुर्जरेश्वर कुमारपाल महाराजा ने कलिकाल– सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा. भगवंत के पास चातुर्मास दरम्यान पाटण के बाहर नहीं जाने की प्रतिज्ञा की थी। इसके साथ वे चातुर्मास दरम्यान मन-वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।

यद्यपि देखा जाए तो संपूर्ण मानव जीवन ही धर्म–सेवन का काल है, अतः हर समय धर्मसाधना में उद्यमशील बनना चाहिए, परंतु इतना शक्य न हो तो भी चातुर्मास दरम्यान विशेष नियम धारण करने चाहिए।

आगम शास्त्रों में चातुर्मास के नव अलंकार बतलाए हैं, इन अलंकारों में सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, परमात्म–पूजन, स्नात्र पूजा, विलेपन पूजा, ब्रह्मचर्यपालन, दान, तपश्चर्या का समावेश है। इन नौ अलंकारों के साथ अन्य व्रत, पच्चक्खाण आदि कर अपने जीवन को आराधनामय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इन सभी कर्तव्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य जिनवाणी श्रवण है। जिस प्रकार निरंतर पानी की बूंदें गिरने पर तपा हुआ लोहे का गोला भी ठंडा हो जाता है, उसी प्रकार निरंतर जिनवाणी का श्रवण करने से वज्र जैसी कठोर आत्मा भी फूल जैसी कोमल बन जाती है।

धर्म आराधना में जरूरी है- विधि शुद्धि और आशय शुद्धि

धर्म की प्रत्येक आराधना, मोक्षफल देने में सक्षम है, यदि वह धर्म–आराधना विधि के पालन एवं शुद्ध आशय से की गई हो ।

सड़क पर हजारों वाहन चलते हैं, हर किसी की दुर्घटना नहीं होती, क्योंकि परिवहन के नियमों का पालन होता है ।

हर क्रिया की नियत विधि होती है । रोटी बनाने की भी अपनी विधि है । यदि ज्यादा सेकी जाय तो वह जल जाएगी और कम सेकी जाय तो कच्ची रहेगी, अतः उसे मापसर सेकना होता है । औषधसेवन भी यथाविधि करने पर ही आरोग्य प्राप्त होता है ।

उसी प्रकार धर्म आराधना में खूब शक्ति है, परंतु उसके योग्य विधि का पालन नहीं होने से वह पूर्णरूप से फलदायी नहीं होता । विधि का पालन होने पर भी यदि आशय की शुद्धि न हो तो किया हुआ धर्म भी पापबंध का कारण बन जाता है ।

चिकित्सक जब शस्त्र क्रिया (Operation) करते हैं, तब शस्त्रों से शरीर के अवयवों को काटते हैं । दुर्भाग्यवश यदि मरीज का देहांत हो जाय तो भी उसे कोई सजा नहीं होती क्योंकि उसका आशय मरीज को बचाने का है ।

कोई हमलावर किसी पर चाकू से हमला करे और व्यक्ति को कोई नुकसान न हो, तो भी पकड़े जाने पर उसे सजा होती है, क्योंकि उसका आश्य गलत है ।

धर्म की शुद्ध आराधना में आशय की शुद्धि खूब जरूरी है । संसारसुख को पाने की चाहना से किया धर्म, हमें वह सुख तो देगा, परंतु उसी में डुबो रखेगा, जो अनेक नये पापों का कारण बनेगा ।

90

बच्चों को राम बनाने के पहले माँ को कौशल्या बनना होगा

वस्तु जितनी कीमती होगी, उसकी सुरक्षा के प्रबंध ज्यादा जरूरी होंगे ! शाक–सब्जीवाला अपनी लॉरी की सुरक्षा का कोई विशेष प्रबंध नहीं करता । बर्तन का व्यापारी भी अपनी दुकान के बाहर बर्तनों को रखता है । परंतु सोने चांदी का व्यापारी आभूषणों का खुलेआम प्रदर्शन नहीं करता है, क्योंकि वे विशेष मूल्यवान हैं ।

उसी प्रकार स्त्रीजीवन का सबसे बडा आभूषण उसका शील है । जिस स्त्री के जीवन में शील नहीं है, वह स्त्री सोलह शणगार सजे तो भी उसकी विशेष कीमत नहीं है । शीलधर्म की सुरक्षा के लिए आर्य संस्कृति में स्त्री के लिए विशेष मर्यादाएँ बताई हैं । मर्यादा के पालन में ही सच्ची सुरक्षा है ।

समुद्र जब तक मर्यादा में रहता है, वह जीवनोपयोगी बनता है, समुद्र अपनी मर्यादा तोड दे, तो महाविनाश का कारण बनता है । वैसे ही स्त्रीजीवन में शीलधर्म की मर्यादा का पालन ही उसे सुखी बना सकता है ।

स्त्रियों का सबसे बड़ा कर्तव्य है 'मातृत्व कर्म' । बच्चे के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव उसकी माँ के आचरण का होता है । यदि माता सदाचारी नहीं है, तो बच्चा कभी सदाचारी नहीं बन सकता । अपनी संतान को राम बनाने के पहले माँ को भी कौशल्या जैसी शीलवती बनना पड़ेगा ।

आज पश्चिम संस्कृति के अनुकरण से शीलधर्म एवं आर्य संस्कृति की मर्यादाओं का नाश हो रहा है, जिसके परिणामवश आज प्रतिदिन बलात्कार की शर्मजनक घटनाएँ खूब बढ़ी हैं । इसे रोकने के लिए अपनी जीवनशैली, भोजनशैली एवं विचारशैली में परिवर्तन जरूरी है ।

91 नारी का श्रेष्ठ अलंकार शील है

तलवार की परीक्षा म्यान से नहीं, उसकी धार से होती है,
गाय की परीक्षा रूप से नहीं, उसके दूध से होती है,
स्त्री की परीक्षा करनेवालो ! जरा सोचो ।
स्त्री की परीक्षा उसके रूप–से नहीं, शील से होती है ।

स्त्री के देह का अलंकार, सोने, चांदी और रत्नों के आभूषण नहीं हैं, बल्कि शील ही उसका श्रेष्ठ आभूषण है ।

स्त्री ने अपने जीवन में शील को सुरक्षित रखा तो मानना पडेगा कि उसने सब कुछ बचाया है और यदि स्त्री अपने शील को ही खो देती है तो मानना पड़ेगा स्त्री ने अपना सर्वस्व खो दिया है ।

काल की बलिहारी है, आज समाज में 'धन' सर्वोपरि हो गया है । स्त्री हो या पुरुष, आज धन के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन हो रहा है । जिसके पास 'धन' (Money Power) है, वह बड़ा आदमी माना जाता है । इसी का परिणाम है कि आज हर व्यक्ति धन के पीछे दौड़ रहा है । येन केन प्रकार से वह धन पाना चाहता है । धन पाने के लिए यदि अन्याय अनीति करनी पड़े या स्त्री को अपना देह या शील भी बेच देना पड़े तो वह भी उसे मंजूर है ।

नदी दो किनारों के बीच में बहती है, तभी वह शोभा देती है । वह अनेकों के ऊपर उपकार कर पाती है, परन्तु वही नदी किनारों के बंधनों को तोड़ देती है, तो भारी तबाही मच जाती है ।

शील के रक्षण में स्त्री की सुरक्षा है और शील के भंग में स्त्री को भय है ।

92

स्त्री के लिए खतरनाक है पुरुष वेष का पहनावा

बाह्य परिवेश का अपने विचारों पर खूब प्रभाव पड़ता है । सैनिक को युद्ध के मोर्चे पर लड़ना होता है, तब वह धोती और कुर्ता पहिनकर लड़ने के लिए नहीं जाता है, वह युद्धभूमि में सैनिक का ही वेष पहनता है । उसी प्रकार स्त्री को अपने शील के रक्षण के लिए स्त्री–योग्य मर्यादित वेष पहिनना चाहिए ।

स्त्री–पुरुष की शारीरिक रचना भिन्न–भिन्न है अतः उन दोनों की आचार–मर्यादा की सुरक्षा के लिए दोनों को भिन्न–भिन्न वेष जरूरी हैं । पुरुष के लिए पुरुष का वेष और स्त्री के लिए स्त्री का वेष ही शोभास्पद होता है । परंतु दुर्भाग्य है कि आज स्त्रीवेष की मर्यादाएँ टूटती जा रही हैं ।

आज अधिकांश कन्याएँ व युवतियाँ अपने स्त्रीवेष की मर्यादाओं को तोड़कर पुरुष वेष पहन रही हैं । स्त्रियों ने अलंकार छोड़ दिये हैं, उसके स्थान पर हाथों में मोबाइल और मोटर साईकल आ गई है ।

स्त्री के लिए पुरुष वेष, अत्यंत खतरनाक है । इसमें उसके शील को खतरा है । जींस पेंट, टी-शर्ट आदि तंग कपडों से अंगों का प्रदर्शन होता है, जिससे उसके चरित्र के पतन की संभावना बढ़ती है ।

प्राचीन काल में एक स्त्री के शील की सुरक्षा के लिए भयंकर युद्ध हो जाता था । दुर्भाग्य है कि आज स्त्री को अपने शील की कीमत नहीं है । वह अपने शील को सामने से बेचने के लिए तैयार हो गई है ।

शील रहित नारी तो प्राण रहित कलेवर की भांति है ।

93 पंखी मेले के समान है परिवार

सत्कार–सन्मान करते समय जैसे लोकव्यवहार में भी मन के भावों की खूब कीमत है वैसे ही धर्म के क्षेत्र में भाव–धर्म की खूब कीमत है । दान देना, शील पालन या तप में आत्मा को धन, इन्द्रिय और शरीर का भोग देना पड़ता है । जबकि भावधर्म की आराधना में धन, इन्द्रिय और शरीर का भोग देना नहीं पड़ता, फिर भी सबसे कठिन भाव धर्म की आराधना है, क्योंकि वह मन के साथ जुड़ी है ।

मन से जुड़े भाव धर्म की आराधना के लिए मन को शुभ भावों में बाँधना जरूरी है ।

बंदर के समान अति चंचल मन को स्थिर करना चाहिए ।

हमें प्राप्त हुआ आयुष्य पानी के बुलबुलें समान है । थोड़ा भी घात लगने पर हमारे प्राणों का नाश हो सकता है । प्राप्त हुई धनसंपत्ति मंदिर पर रही ध्वजा के समान अत्यंत चंचल है । जिस संपत्ति को पाने के लिए अनेक प्रकार के पाप करने पड़ते हैं, प्राप्त करने के बाद उसके संरक्षण में भयभीत रहना पड़ता है और जो स्वजन के साथ विरोध कराने वाली है, ऐसी संपत्ति हमें सुख देने में समर्थ नहीं है ।

धन हमारे जीवन जीने का साधन है, उसे जीवन का साध्य बनानेवाला अपने जीवन को बर्बाद कर देता है ।

परिवार, मित्र, कुटुंब आदि भी पंखी–मेले के समान है । जैसे रात्रि–पसार करने के लिए अनेक पंखी वृक्ष का आश्रय लेते हैं, परंतु प्रातः काल होते ही वे सब बिखर जाते हैं, वैसे ही कुटुंब–परिवार भी एक जीवन के साथी है, मौत होने पर मुर्दे को जलाकर खाक कर देते है ।

94

समय पर समझ और समझ पूर्वक समय की प्राप्ति दुर्लभ है

प्रायः समय के साथ समझ और समझ के साथ समय प्राप्त नहीं होता है । हमारे हाथों में जब सत्कार्य करने के लिए समय होता है, तब दुनिया की ऐश में हम अपनी सारी समझदारी भूल जाते हैं, और जब जीवन में सत्कार्य करने योग्य समझ आती है, तब प्रायः हाथ से समय चला गया होता है । मात्र पछतावा ही हाथ में रहता है ।

हर व्यक्ति सुबह होते ही पैसे के लिए दौड़ने लगता है । पैसे कमाने का मुख्य उद्देश्य एक मात्र पाँच इन्द्रियों के विषय–सुखों को पाना है । पैसे मिलते ही व्यक्ति सुन्दर शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के सुखों को पाने में प्रयत्नशील हो जाता है ।

रूप में आसक्त व्यक्ति अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए फिल्म आदि का सहारा लेता है ।

रसना में लोलुप बना व्यक्ति होटलों में जाकर अभक्ष्य भक्षण करता है ।

स्त्री के स्पर्श में पागल बना व्यक्ति परस्त्रीगमन और वेश्यागमन करता है ।

पैसों की प्राप्ति के बाद जीवन में धर्म नहीं बढ़ता परंतु पाप ही बढ़ता है । समाज में पैसेवालों को ज्यादा इज्जत दी जाती है, परंतु वास्तविकता तो यह है कि पैसे पाने के लिए हिंसा, झूठ और चोरी के पाप अवश्य करने होते हैं ।

जिस धन, स्वजन को यहीं छोड़कर जाना है, उनके लिए किये हुए पापों का फल हमें अकेले ही सहन करना पड़े, तो कौन समझदार व्यक्ति उसे पाने में व्यर्थ मोहित होगा । समय के साथ समझ और समझ के साथ समय दुर्लभ है ।

दर्प और कंदर्प को जीतना कठिन है

युद्धभूमि में अपने पराक्रम से लाखों योद्धाओं को जीतना आसान है । अपने पंजों से महाकाय हाथी को चीर देनेवाले भयंकर सिंह को भी पिंजरे का पशु बनाना आसान है । परंतु बाहर के इन शत्रुओं से भी भीतर के शत्रुओं को जीतना कठिन है ।

मनुष्य जीवन में कषायों की अपेक्षा मान अर्थात् दर्प और संज्ञा की अपेक्षा मैथुन संज्ञा अर्थात् कंदर्प की प्रबलता है । इन दोनों अंतरंग शत्रुओं की लडाई में मनुष्य भी हार खा जाता है ।

भूतकाल में हुए महाभारत के युद्ध के पीछे दुर्योधन का मान कारण था, तो रामायण के युद्ध के पीछे रावण की कामवासना कारण थी । मान और काम के पीछे पागल बने बड़े योद्धा भी टिक न पाये ।

भीतर के इन शत्रुओं की प्रबलता होने पर व्यक्ति कौनसा पापाचरण नहीं करता है । वर्तमान में होने वाले दुराचार–व्यभिचार का मुख्य कारण ये अंतरंग शत्रु ही हैं ।

ये अंतरंग शत्रु एकांत में अपना विशेष प्रभाव बताते हैं । साधुजीवन की सुरक्षा गुरुकुल वास में है, एकांत में नहीं; वैसे ही स्त्रीजीवन की सुरक्षा परिवार के बीच है ।

आर्य संस्कृति में स्त्री की सुरक्षा के लिए स्त्री को कुमारी अवस्था में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहने का निर्देश किया है । उस अधीनता में बंधन नहीं बल्कि सुरक्षा है ।

राग-द्वेष से समता की स्थिरता भंग होती है

श्रावक के बारह व्रतों में पांच अणु व्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत बताए हैं । पाँच बड़े पापों में हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का यथाशक्य त्याग करना अणुव्रत स्वरूप है । तत्पश्चात् इन व्रतों में सहाय करने के लिए दिशापरिमाण, भोगोपभोग विरमण एवं अनर्थदण्ड के पापों का त्याग करना चाहिए ।

पूर्वोपार्जित पापों का क्षय करने एवं विरतिमय जीवन की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सामायिक, पौषध, देसावगासिक एवं अतिथि संविभाग रूप शिक्षाव्रत है ।

शिक्षाव्रत के चारों व्रतों में सामायिक का समावेश है । जिस प्रकार तालाब का पानी स्थिर और शांत हो तभी हमें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, परंतु ज्योंही उस पानी में कोई कंकड़ डालता है, वह पानी अस्थिर हो जाता है । तत्क्षण उस पानी में प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है ।

जब आत्मा अपने स्वभाव में स्थिर होती है, तभी आत्मा में आत्मा के दर्शन सम्भव हैं, परंतु ज्योंही राग अथवा द्वेष का कंकड़ उसमें गिरता है, आत्मा के अध्यवसाय आंदोलित हो उठते हैं और समता नष्ट हो जाती है ।

आज तक जितनी भी आत्माएं मोक्ष में गई हैं, वे समता की साधना के बल से गई है, अतः अपने जीवन में समता भाव को लाने का प्रयत्न होना चाहिए ।

छोटे-छोटें कष्टों को सहन करने का अभ्यास करनेवाला ही भविष्य में बडे कष्टों को आसानी से सहनकर सकेगा ।

97

विनीत ही शाश्वत सुख पा सकता है

स्व-कल्याण के लिए आत्मा को पुरुषार्थ करना पड़ता है, जबकि परकल्याण के लिए पुरुषार्थ नहीं बल्कि पुण्य का पीठबल जरूरी होता है ।

भगवान महावीर की आत्मा ने सांसारिक संबंधों का त्याग कर दीक्षा स्वीकार की थी । अप्रमत्त साधना से घोर पुरुषार्थ कर सभी कर्मों का नाश किया था । जिसके फलस्वरूप केवलज्ञान प्राप्त किया था । केवलज्ञान की प्राप्ति के साथ ही जगत् के जीवों के उद्धार के लिए तीर्थंकर नामकर्म उदय में आया ।

वीर प्रभु ने 30 वर्षों तक प्रतिदिन दो प्रहर धर्मदेशना प्रदान कर अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया । जीवन के अंतिम समय में दो दिन निर्जल उपवास सहित निरंतर दो दिन धर्मदेशना प्रदान की । आज भी भगवान की अंतिम देशना रूप 'उत्तराध्ययन सूत्र' हमें प्राप्त हुआ है । भावी काल की परिस्थिति को अपने ज्ञान से जानकर भगवान ने हमें शुद्ध धर्मबोध दिया । उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्ययनों में सर्वप्रथम विनय अध्ययन बताया । जो विनीत होगा, वही शाश्वत सुख प्राप्त कर सकता है ।

जिसके जीवन में विनय होगा, उसके जीवन में अन्य गुण खींचकर चले आते है । विनय से ही सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है । सम्यग्ज्ञान का फल सम्यग् आचरण है । इस प्रकार विनय गुण रत्नत्रयी को प्राप्त कराता है ।

त्याग और वैराग्य से आत्मा शुद्ध होती है

मुमुक्षु आत्मा के लिए वही प्रवृत्ति आचरणीय और आदरणीय है, जिस प्रवृत्ति के द्वारा राग का ह्रास और वैराग्य भाव की वृद्धि होती हो । जिस प्रवृत्ति से राग बढ़ता हो, वह प्रवृत्ति आत्मा के लिए अहितकर ही कहलाती है, ऐसी अहितकर प्रवृत्ति का त्याग करने में ही आत्महित है ।

संसार में बैठे हैं तो कुछ–न–कुछ प्रवृत्ति हुए बिना नहीं रहती है, परंतु प्रवृत्ति वैसी करनी चाहिए, जिससे अपना राग भाव घटता हो । होटल-क्लब में जाने से, टी.वी. पिक्चर आदि फिल्मी गीत सुनने से अपने राग भाव में वृद्धि होती है ।

मंदिर और उपाश्रय रागभाव को तोड़ने के स्थान हैं । त्याग, तप और संयममय पूर्वाचार्यों के चरित्रों का पठन-पाठन और स्वाध्याय करने से अपने राग-भाव का नाश और वैराग्य भाव की पुष्टि होती है ।

त्याग और वैराग्य में, वैराग्य कठिन है । वैराग्य भाव आ जाने के बाद त्याग करना, बहुत आसान है । विरक्त आत्मा के लिए त्याग करने में कोई कठिनाई नहीं है । वैराग्य-रहित त्याग में विशेष दम नहीं है, अतः अपना वैराग्य भाव पुष्ट हो, उसके लिए हमेशा वैराग्यपोषक ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिए ।

एक छोटीसी चिनगारी लाखों टन लकड़ियों को राख की ढेरी करने में समर्थ है, उसी प्रकार हमारे पिछले अनंत भवों के पापों का नाश करने में तप धर्म की आराधना समर्थ है ।

परंतु उस तप-त्याग के साथ भीतर में वैराग्यभाव होना जरुरी है । वैराग्य के अभाव में किया गया त्याग मुक्ति का कारण नहीं बनता है । वैराग्य भाव टिका रहे, उसके लिए अपना प्रयत्न होना चाहिए ।

99 विषयों के भोग में वैराग्य नहीं

पाँच इन्द्रियों के विषयभोग में रत आत्मा के लिए वैराग्य भाव अत्यंत दुर्लभ है । अनुकूल विषयों का सेवन करना और वैराग्य भाव को टिकाए रखना खूब कठिन है ।

विषयों का सेवन करने से आसक्ति-भाव बढ़ता है, अतः जो व्यक्ति अपने वैराग्य को सुरक्षित रखना चाहता है, उसका कर्तव्य है कि वह विषयों की प्रवृत्ति से सदैव दूर रहे ।

जिस प्रकार काटनेवाले कुत्ते से दूर रहने में ही मजा है, पास जाने पर वह कभी भी काट सकता है, उसी प्रकार विरक्त को विषयों के संग से दूर रहने में ही मजा है । विषयों की प्रवृत्ति आसक्ति भाव को लाए बिना नहीं रहती है ।

जो व्यक्ति अपने जीवन में वैराग्य भाव को पुष्ट करना चाहता हो, उसे पाँच इन्द्रियों के शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श रुप विषयों का त्याग करना चाहिए ।

विषयों में प्रवृत्त रहकर वैराग्य भाव को जीवंत रखना, अत्यंत कठिन साधना है । ऐसी साधना तीर्थंकर एवं भरत महाराजा जैसी महान् आत्माओं के जीवन में ही शक्य है, हर व्यक्ति के लिए शक्य नहीं है ।

सामान्यतः सभी जीवों पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का प्रभाव होता है । धर्म आराधना के प्रवाह में बहने के लिए चातुर्मास का काल ज्ञानियों ने बताया है ।

विषयों के त्याग बिना वैराग्य भाव को टिकाना लोहे के चनें चबाने के समान अत्यंत कठिन है । अतः अपने वैराग्य भाव को टिकाने के लिए त्याग का अवलंबन अवश्य लेना चाहिए ।

'विषय सुख'-पत्थर की नाव समान है

जहरीले मीठे लड्डू खाने में अवश्य स्वादिष्ट लगते हैं, एक बार तो क्षुधा को भी शांत कर देते हैं, परंतु परिणाम-सिर्फ मौत ।

संसार के भौतिक सुख जहरीले लड्डू के समान हैं । दिखने में मनमोहक और सुंदर हैं, परंतु उनका उपभोग परिणाम में अत्यंत दुःखदायी है ।

विष सिर्फ एक ही जीवन का अंत लाता है, जबकि भोगसुख तो जीवात्मा को दीर्घ काल तक संसार में भटकाते हैं । जिसके परिणाम–स्वरूप जीवात्मा अनेक भवों तक दुःख की भयंकर यातना सहन करनी पडती है ।

सर्वज्ञ भगवान महावीर के त्याग मार्ग पर जो नहीं चलता है और जो विषयसुख में तल्लीन रहता है, वह इस भवसागर को पार करने के लिए लकड़े की नाव को छोड़कर पत्थर की नाव का आश्रय ले रहा है ।

पत्थर की नाव चाहे कितनी भी सुंदर क्यों न हो, वह खुद डूबती है और अपना आश्रय लेनेवाले को भी डूबोती है ।

भवसागर से पार उतरने के लिए जिनधर्म रूपी लकड़े की नाव का आश्रय करना चाहिए ।

विषय सुखों के आकर्षण ने पूर्वधर महार्षियों का भी अधः पतन करा दिया है । जो भी इन विषय सुखों से आकर्षित हुए है, उनका आत्म-विकास अवरुद्ध हो जाता है । अतः आत्म हितैषी को इन विषय सुखों में ललचाने जैसा नहीं है ।

101

मोह का नशा अनंत है, जो जिनवाणी से नष्ट होता है

भौतिक सुख के सेवन में सुख का अंश जरूर है, परंतु उसके परिणामस्वरूप अनंत दुःखों की परंपरा है, इसलिए ज्ञानियों ने उन सुखों को सुख न कहकर दुःखरूप कहा है।

सर्वाधिक मूल्यवान ऐसे मनुष्यभव में धर्म की आराधना को छोड़कर भौतिक सुखों का भोग करना यह ऐरावण हाथी को बेचकर गधा खरीदने जैसा है। सत्य तो यह है कि हम भोग को नहीं भोगते है, भोग ही हमारा भोग ले लेते है।

यदि आत्मा जागृत है, तो मोह कमजोर होता है, परंतु आत्मजागृति नहीं है, तो मोह बलवान हो जाता है।

शराब का नशा कुछ घंटो में उतर जाता है, परंतु मोह का नशा अनंत काल में भी नहीं उतरता है।

मोह के नशे को उतारने के लिए तत्त्व का सत्यबोध जरूरी है। तत्त्व के बोध को पाने और मोह का नाश करने के लिए भगवान के आगमवचन–रामबाण इलाज है। जिनवाणी एक मात्र उपाय है।

मोह का नशा शराब के नशे से भी अधिक खतरनाक है। इस नशे में जो चकचूर बना, वह दीर्घ काल तक संसार में भटका है। संसार के भटकाव से बचना है तो अपने जीवन में जिनवाणी का रसास्वाद करना ही होगा।

फिजूलखर्ची एक बहुत बड़ी बुराई है

कृपणता दोष है, किन्तु वस्तु का पूर्ण सदुपयोग करना दोष नहीं है । धन का अनावश्यक व्यय न करना भी गुण है और अवसर आने पर लाख रुपये खर्च कर देना भी गुण है ।

फिजूलखर्ची एक बहुत बड़ी बुराई है । इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति कर्जदार बन जाता है । जब कर्ज बढ़ जाता है, तब उसकी पूर्ति के लिए वह अन्याय, अनीति का सहारा लेने में नही हिचकिचाता है ।

आज देश दुनिया में दिन–प्रतिदिन समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं । इसका एक कारण फिजूलखर्ची है । अपनी आय का विचार किये बिना फैशन और विलासिता के नाम पर खर्च बढ़ता जा रहा है ।

फैशन और विलासिता में डूबा व्यक्ति अधिक विचार नहीं कर पाता है । आय से अधिक व्यय करने पर जीवन तनावग्रस्त हो जाता है, जिससे उसको मजबूरन आत्महत्या आदि के कदम उठाने पड़ते हैं । ऐसा कदम स्वयं और परिवारजनों के लिए अत्यंत पीड़ादायक होता है । अतः जीवन में विलसिता को छोड़ सात्त्विकता अपनाना ही श्रेयस्कर है ।

व्यक्ति के जीवन में सात्त्विकता है तो थोडी आय में भी आसानी से जीवन निर्वाह हो सकता है और विलासिता है तो अमाप संपत्ति के बीच भी व्यक्ति को धन की तंगी ही नजर आती है ।

103

संसार में गुलामी ही है

संसार में हर व्यक्ति स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है । स्वतंत्रता सभी को पसंद है, परतंत्रता किसी को पसंद नहीं है, परंतु सच्ची स्वतंत्रता एकमात्र मोक्ष में है । जो आत्मा कर्म के अधीन है, उसे संसार में अनेक प्रकार की पराधीनताएँ स्वीकार करनी पड़ती हैं ।

कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्ति पाने के लिए प्रभु–आज्ञा की आराधना और गुरु भगवंत की पराधीनता को स्वीकार करना पड़ता है ।

जो व्यक्ति गुरु की अधीनता एवं प्रभु की आज्ञा को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं है, उसे संसार में अनेक की गुलामी करनी पड़ती है और जो इसे स्वीकार करने में राजी होता है उसे एकदम स्वाधीन, निष्पाप एवं परोपकारमय साधुजीवन प्राप्त होता है ।

साधनों के आधार पर जीवन जीनेवालों को साधन के बंद होने पर जीवन ठप हो जाता है, जबकि साधना के आधार पर जीवन जीने वाले को प्रतिसमय आनंद ही आनंद है ।

इस संसार में कहाँ जन्म लेना ? यह जीव के अधीन नहीं है । यहां से मरकर व्यक्ति कहीं भी पैदा हो सकता है, यह जीव की सबसे बडी पराधीनता है । ठीक ही कहा हैं–

'जगत् जीव है कर्माधीना, अचरिज कछुअ' न लीना

संसार के सभी जीव कर्म की गुलामी वहन कर रहे है । मुक्तात्मा ही पूर्ण स्वतंत्र है ।

104 संस्कार दिया तो सब कुछ दिया

मानव–जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव बचपन के संस्कारों का पड़ता है । कुम्भकार जब मटका बनाता है, तब गीली मिट्टी से मन चाहा आकार बना सकता है, परंतु जब वह मिट्टी सूख जाती है, तो उसके आकार में परिवर्तन करना कुम्हार के हाथ में भी नहीं है ।

मानव–जीवन मिट्टी के समान है । उसमें बचपन, गीली मिट्टी के समान है । उस उम्र में बच्चा अपने बड़ों की सारी बातें मानने को तैयार होता है, तब अच्छे संस्कारों का सिंचन किया जाय तो पूरे जीवनभर उन संस्कारों की छाया उसके जीवन में रहेगी और यदि बचपन में संस्कार नहीं दिये तो बड़े होने के बाद उसके जीवन में अच्छे संस्कारों का सिंचन अशक्य है ।

संस्कारों का सिंचन करने के लिए वर्तमान में सर्वश्रेष्ठ साधन धार्मिक पाठशाला है; जहाँ धार्मिक ज्ञान के साथ–साथ जीवन में उपयोगी विनय, विवेक आदि गुणों का सिंचन बड़ी आसानी से कराया जा सकता है ।

जिन माता–पिता ने अपने बच्चों को मात्र धन-संपत्ति दी है, उन्होंने अपने बच्चों को कुछ नहीं दिया और जिन माता–पिता ने अपने बच्चों को संस्कारित किया है, उन्होंने सब कुछ दिया है ।

दुर्भाग्य है कि जो देश समूचे विश्व के लिए आदर्श था, आज उसी देश में अपने आर्य संस्कारों को भूलाया जा रहा है । व्यक्ति के मूल्यांकन का माप दंड ही बदल गया है । गुणों के बजाय आज धन से व्यक्ति का मूल्यांकन हो रहा है ।

105 आत्मा पर कर्म-रोग लगा हुआ है

हम इस देह को विशुद्ध करने के लिए प्रयत्न करते हैं, परन्तु इस देह का स्वभाव बड़ा विचित्र है । जो भी इसके सम्पर्क में आता है, उसे यह बिगाड़ देता है, अत्यन्त दुर्गन्धमय बना देता है ।

दुनियाँ में जितने कारखाने हैं, वे कच्चे माल को पक्का माल बनाते हैं । कपड़े की मिल देखिए–रूई के धागों को वह कितने आकर्षक कपड़े में बदल देती है । परन्तु यह शरीर तो विपरीत स्वभाव वाला कारखाना है, यह पक्के माल को गंदगी में बदल देता है ।

सुगन्धित इत्र इसके सम्पर्क में आया तो उसे यह पसीने में बदल देता है । स्वादिष्ट आम व मिष्टान्न इसके सम्पर्क में आए तो उसे यह विष्ठा में बदल देता है ।

रोग के निवारण के लिए पथ्य का सेवन और अपथ्य का त्याग अनिवार्य है । दोनों की उपेक्षा से रोग का निवारण शक्य नहीं है । अपथ्य का त्याग किया जाय और पथ्य का सेवन न किया जाय अथवा पथ्य का त्याग किया जाय और अपथ्य का त्याग न किया जाय तो रोग का निवारण शक्य नहीं है । आत्मा पर कर्म का रोग लगा हुआ है । उस कर्मरोग के निवारण के लिए अपथ्यभूत अधर्म का त्याग और पथ्यभूत धर्म का सेवन अनिवार्य है ।

मोहाधीन आत्मा को शरीर के रोगों की जितनी चिंता होती हैं, उतनी चिंता आत्मा के कर्म रोगों की नहीं है । शरीर के रोग एक ही जीवन में पीडा देते हैं, जबकि कर्म के रोग आत्मा को अनेक भवों तक हैरान करते है ।

106 भोगी और योगी-दोनों सदा अतृप्त हैं

भोगी और योगी का जीवन–पथ न्यारा और निराला होता है । भोगी गान में आसक्त होता है, तो योगी ज्ञान में । दोनों की दिशाएँ भिन्न–भिन्न हैं । फिर भी दोनों में एक समानता दिखाई देती है कि वे सदा अतृप्त रहते हैं ।

भोगी को भोग के साधन चाहे जितने मिल जायें, वह सदा अतृप्त रहता है । इन्द्रियों के विषयसेवन के बाद भी उसे पूर्ण तृप्ति या आनंद का अनुभव नहीं होता है । उसकी तृषा, उसकी भूख सदा बनी रहती है । वह सदा नये–नये भोग और भोग के साधनों की प्राप्ति के लिए लालायित रहता है ।

अतृप्ति की यही स्थिति, योगी की भी है । परंतु पथ और दिशा अलग होने के कारण उसे विषयसेवन से भी ज्यादा आनंद ज्ञानप्राप्ति में होता है । ज्यों–ज्यों शास्त्र अध्ययन करता जाय, त्यों–त्यों नया–नया ज्ञान प्राप्त होता जाता है और ज्ञान की पिपासा बढ़ती जाती है ।

जीवन का सार यही है कि भोग का त्याग कर योग के सच्चे सुख में आत्मा को डुबोकर सच्चा आनंद प्राप्त किया जाय ।

ज्ञानी का आनंद कुछ और ही है । ज्ञान के माध्यम से ज्ञानी को जो आनंद आता हैं, वह आनंद बाह्य किसी भी सामग्री से प्राप्त नहीं हो सकता है ।

ज्ञान पाने के लिए अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है, वह आत्मा के भीतर से ही प्राप्त होता है । जो आत्मा की खोज में लगा हैं, उसे परमानंद की अनुभूति हुए बिना नहीं रहती है ।

107

ब्रह्मचर्य-पालन में सर्वश्रेष्ठ आलंबन है गिरनार तीर्थ

इस जगत् में दो महान् तीर्थ हैं–शत्रुंजय और गिरनार ! शत्रुंजय तीर्थ से अनंत आत्माएँ मोक्ष में गयी हैं, तो गिरनार तीर्थ से भी अनंत आत्माएँ मोक्ष में गयी हैं । वर्तमान चौबीसी के श्री नेमिनाथ भगवान के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक इस तीर्थ पर हुए । गत चौबीसी के आठ तीर्थंकरों के 3–3 कल्याणक और दो तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक रूप 26 कल्याणक इस तीर्थ पर हुए हैं । साथ ही आगामी चौबीसी के चोबीस तीर्थंकर भगवान इसी तीर्थ से मोक्ष में जाएंगे ।

'वस्तुपाल चारित्र' में तीर्थमहिमा बताते हुए कहा है, 'जो पुण्यात्मा अन्य स्थान में रहकर भी इस गिरनार तीर्थ का प्रतिदिन ध्यान करता है, वह चौथे भव में केवलज्ञान पाकर मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ।'

गिरनार तीर्थ के मूलनायक श्री नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा 1,65,735 वर्ष कम, 20 कोड़ा कोड़ी सागरोपम वर्ष पुरानी होने से सबसे ज्यादा प्राचीन है । गिरनार तीर्थ के कर्णविहार में विराजमान इस अलौकिक प्रतिमा को गिरनार तीर्थ पर स्थापित हुए 84,785 वर्ष हो चुके हैं ।

संयमजीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण ब्रह्मचर्य महाव्रत के पालन में यह तीर्थ और तीर्थाधिपति बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान सर्वश्रेष्ठ आलंबन रूप हैं ।

उत्तम द्रव्य की भांति उत्तम क्षेत्र भी शुभ भावों को पैदा करने में सक्षम है । ब्रह्मचर्य के पालन व रक्षण के लिए गिरनार तीर्थ सर्वश्रेष्ठ आलंबन है ।

108

''आहार से बनते है हमारे विचार''

आत्मा का शुद्ध स्वरूप तो अनाहारी है । परंतु जब तक आत्मा कर्म के अधीन है, तब तक आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है, और शरीर को टिकाने के लिए आहार ग्रहण अति-आवश्यक है ।

आहार ग्रहण करना तो हम जन्म से जानते हैं, परंतु क्या खाना, कैसे खाना, यह जीवन के अंत तक भी नहीं जान पाते हैं ।

शरीर रूपी महल के चार मुख्य स्तंभ हैं– आहार, निद्रा, श्रम और ब्रह्मचर्य । आहार की अनियमितता से शरीर का एक स्तंभ कमजोर हो जाता है, अतः हमें शरीर व आत्मा के लिए हितकारी भोजन करना चाहिए ।

जैनधर्म में निर्दिष्ट आहार संबंधी नियमों का पालन किया जाय तो आत्मा के भाव आरोग्य की पुष्टि के साथ शरीर के आरोग्य की भी रक्षा होती है और शरीर भी पुष्ट बनता है ।

हम जो आहार ग्रहण करते हैं, उससे मात्र हमारा शरीर ही नहीं बनता है, बल्कि हमारे विचार भी बनते हैं । हमारे विचारों पर आहार का अत्यधिक प्रभाव है अतः शारीरिक विकास, मानसिक विकास और आत्मिक सौंदर्य को पाने के लिए आहार का विवेक खूब जरुरी है ।

सभी को जीवन पसंद है, तो हिंसा क्यों?

श्रावक–जीवन के अणुव्रतों में सर्वप्रथम प्राणातिपात–विरमण अणुव्रत है । श्वासोच्छ्वास आदि द्रव्य प्राणों को जो धारण करते हैं, उन्हें प्राणी कहते हैं । संसार में रहे सभी जीव ''आयुष्य'' रूप प्राण को अवश्य धारण करते हैं । आयुष्य रूप प्राण के नाश होने पर जीव की मृत्यु हो जाती है ।

संसार में रहे सभी जीवों को जीना पसंद है, मरना किसी को पसंद नहीं है । किसी भी जीव के प्राणों का नाश करना, उसी को प्राणातिपात अर्थात् हिंसा कहते हैं ।

प्रकृति का यह नियम है, हम दूसरे जीवों को जो देते हैं, वही हमें प्राप्त होता है । हम जीवों को जीवन देंगे तो हमें जीवन मिलेगा और यदि अन्य जीवों के प्राणों का हरण करेंगे तो हमें मृत्यु मिलेगी ।

मात्र जैनधर्म में ही नहीं परंतु हिन्दू धर्म, सिक्ख धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म आदि सभी धर्मों में अहिंसा को श्रेष्ठ धर्म कहा है । महान् संत श्री तुलसीदास जी भी दया को धर्म का मूल कहते हैं । अतः प्रत्येक श्रावक को अपने जीवन में अहिंसा का आचरण करना चाहिए । भूतकाल में हुए कुमारपाल महाराजा आदि ने अहिंसा के पालन से ही अपने संसार–सागर का अंत लाया था ।

योग शास्त्र ग्रंथ में अहिंसा धर्म की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि जो अन्य जीवों को अभयदान देता है, उसे दीर्घ आयुष्य, सुंदर रुप, निरोगी काया और निर्मल यश की प्राप्ति होती है ।

13 अरब से अधिक विकल्प हैं श्रावकव्रतों के

संसार में रहते हुए भी मोक्ष को लक्ष्य में रखकर जो निरंतर साधना मार्ग में प्रवृत्तिशील होता है, वह श्रावक है । श्रावक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए जैनाचार्य श्री देवेन्द्रसूरि महाराज ने ''श्राद्धदिन कृत्य'' ग्रंथ में कहा है कि,

जो जिनेश्वर देव प्ररूपित शासन में अपनी श्रद्धा को दृढ़ करता है, जो पुण्योदय से प्राप्त हुई लक्ष्मी का सात क्षेत्रों की भक्ति में वपन करता है तथा जो जिनेश्वर देव की आज्ञा को धारण करनेवाले सुसाधु जन की सेवा-शुश्रूषा आदि करके नित्य पुण्य का बंध करता है, वह श्रावक है ।

साधुजीवन में स्वीकृत प्रतिज्ञा में किसी भी विकल्प को स्थान नहीं है, जिस प्रतिज्ञा को स्वीकार किया हो, उसे जीवन भर तक पालन करना है, अतः साधुजीवन के व्रतों को महाव्रत कहा जाता है । जबकि श्रावक जीवन में अणुव्रतों में बारह व्रतों के भेदों के भंग की अपेक्षा से 13 अरब 84 करोड़, 12 लाख, 87 हजार दो सों (13,84,12,87,200) विकल्प होते हैं ।

साधु जीवन की प्रतिज्ञा निर्विकल्प होने से मेरु पर्वत समान ऊँची कही गई है और श्रावक जीवन की प्रतिज्ञा में विकल्प होने से अणु के समान सूक्ष्म कही गई है ।

जब तक अपने जीवन में सभी पापों से विराम पाने का सामर्थ्य प्रकट न हो तब तक आंशिक पापों से भी विराम पाने का पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए ।

आज आंशिक पापों से मुक्त बननेवाला ही भविष्य में सर्व पापों से मुक्त बन सकता है ।

श्रावक जीवन की नींव, सम्यग्दर्शन है

इमारत की नींव के आधार पर इमारत की मजबूती, जानी जाती है । उसी प्रकार, श्रावकजीवन के व्रतों की नींव-सम्यग् दर्शन है । इसके अभाव में साढ़े नौ पूर्व का ज्ञान भी अज्ञान है और कष्टमय चारित्र की आराधना भी मात्र कायकष्ट है । अतः व्रतों के स्वीकार के पूर्व श्रावक को सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन को स्वीकार करना आवश्यक है ।

जिनेश्वर सिवाय अन्य किसी को आराध्य देव नहीं स्वीकारना, जिनेश्वर की आज्ञानुसार सर्वविरति धर्म की आराधना करते साधु को छोड़ अन्य किसी को गुरू नहीं मानना एवं जिनेश्वर प्ररूपित धर्म को छोड़ अन्य धर्म को धर्म नहीं मानना । इन तीन प्रतिज्ञाओं के स्वीकार से जीवन में सम्यग्दर्शन रूपी नींव रखी जाती है ।

नींव को मजबूत करके जीवन में बारह व्रतों को स्वीकार करना चाहिए । इन बारह व्रतों को तीन विभागों में बाँटा गया है जिनमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत है ।

प्रत्येक श्रावक को अपनी शक्ति अनुसार इन बारह व्रतों के स्वीकार और पालन में उद्यमवंत रहना चाहिए ।

भूतकाल में अपनी आत्मा ने अनंतीबार रजोहरण अर्थात् सर्वविरतिधर्म स्वीकार किया परंतु सम्यग्दर्शन के अभाव में वह चारित्र भी अपनी आत्मा का उद्धारक नहीं बन सका । अतः जीवन में सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए अवश्य प्रयत्न होना चाहिए ।

आत्मा को कर्मों से रिक्त करे, वह 'चारित्र'

आत्मा पर लगे कर्मों के बंधनों को तोड़ने का कार्य करता है–चारित्र । हमारी आत्मा पर अनंत पाप राशि लगी हुई है । प्रयास के बिना यदि इस पापराशि का उदय द्वारा क्षय किया जाय, तो आत्मा कभी भी कर्मबंधनों से मुक्त नहीं हो सकती, क्योंकि उदय द्वारा क्षय होते कर्म अत्यंत अल्प प्रमाण में है, जबकि आत्मा प्रति समय नए–नए कर्मों का बंध करती रहती है । अतः कर्मों के बंधनों से मुक्त होने के लिए चारित्र का स्वीकार ही परम श्रेयमार्ग है ।

सम्यग्दर्शन हमारे संसार को परिमित बनाता है, जिसे प्राप्त करने के लिए सम्यग्ज्ञान जरूरी है । तो सम्यक्चारित्र हमारे संसार का अंत लाता है ।

रत्नत्रय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है 'चारित्र' । चारित्र की प्राप्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन रूप श्रद्धा एवं सम्यग्ज्ञान रूप आत्म प्रकाश को आचरण में लाना ।

चारित्र की आराधना के बिना सम्यग् श्रद्धा एवं ज्ञान को पंगु कहा है । जैसे जंगल की आग में फँसे पंगु व्यक्ति को वहाँ से मुक्त होने का उपाय ज्ञात है, परंतु शरीर की पंगुता के कारण वह उस आग में से मुक्त नहीं हो सकता है, वैसे ही संसाररूपी जंगल से मुक्त होने का ज्ञान होने पर भी यदि उस ज्ञान का आचरण न हो तो वह संसाररूपी जंगल को पार नहीं कर सकता । आचरण के बिना मात्र ज्ञान, आत्मा का उद्धारक नहीं है ।

सम्यग्दर्शन होने पर वह आत्मा चारित्र की प्राप्ति के लिए जलबिन मछली की भाँति तड़पती है । चाहे चक्रवर्ती हो या तीर्थंकर, राजा हो या रंक, कर्म से मुक्त बनने के लिए चारित्र का स्वीकार करना ही पड़ता है ।

तीर्थाधिराज है शत्रुंजय महातीर्थ

मंत्रों का राजा मंत्राधिराज नमस्कार महामंत्र है ।

यंत्रों का राजा यंत्राधिराज श्री सिद्धचक्र महायंत्र है ।

पर्वों का राजा पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व है, उसी प्रकार तीर्थों का राजा तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय महातीर्थ है ।

जगत् में तीर्थ अनेक हैं, परंतु शत्रुंजय महातीर्थ को तीर्थाधिराज कहा गया है, क्योंकि इस तीर्थ के कण–कण का स्पर्श करके भूतकाल में अनंतानंत आत्माएँ मोक्ष में गई हैं ।

चैत्री पूर्णिमा के शुभ दिन–युगादिदेव श्री आदिनाथ भगवान के प्रथम गणधर श्री पुंडरीक स्वामीजी अपने पाँच करोड़ साधुओं के साथ मोक्षपद प्राप्त हुए थे ।

विश्व के सभी धर्म, अपनी–अपनी मान्यतानुसार किसी स्थान को पवित्र तीर्थस्थान के रूप में मानते हैं और उस तीर्थ की यात्रा कर अपने आपको कृतार्थ समझते हैं । हिन्दू धर्म में काशी, मथुरा, चार धाम आदि की यात्रा का बड़ा महत्व है । मुसलमान भी हज की यात्रा के लिए मक्का मदीना जाते हैं । क्रिश्चियन लोग जेरूसलम आदि एवं बौद्ध लोग बौद्ध गया को पवित्रस्थान के रूप मे मानते हैं ।

जैनधर्म में तीर्थंकर परमात्मा के कल्याणक स्थान, परमात्मा की विहार क्षेत्र स्पर्शना भूमि को तीर्थ के रूप में पवित्र माना गया है । जिस मंदिर की प्रतिष्ठा 100 वर्ष से अधिक हुए हों उसे भी तीर्थ माना जाता है । इन सभी तीर्थों में शत्रुंजय महातीर्थ का अपना विशिष्ट स्थान है ।

अतः उस महातीर्थ की जाने-अनजाने में भी आशातना न हो जाय, उसका पूरा ख्याल रखना चाहिये ।

छोटे से धर्म अनुष्ठान में बड़ा फल देने की ताकत है, यदि वह धर्म अनुष्ठान विधिपूर्वक एवं निर्मल भाव से किया जाय ।

डॉक्टर द्वारा दी गई दवाई को मात्र पास में रखने से आरोग्य की प्राप्ति नहीं होती । आरोग्य को पाने के लिए उस दवाई का सेवन जरूरी है । वैसे ही मात्र क्रिया करने या प्रवचन सुनने से आत्मा के आरोग्य की प्राप्ति नहीं होगी परंतु उसमें शुभ भावों को अवश्य जोड़ना होगा ।

कितनी धर्मक्रियाएँ की हैं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, परंतु कैसे और किस भाव से धर्मक्रियाएँ की हैं, वह अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

अनंत भव के भ्रमण में ऐसी कोई धर्म आराधना नहीं है, जो हमने नहीं की हो, परंतु उसमें या तो अविधि की है अथवा आशय की अशुद्धि के कारण, उस धर्म के वास्तविक फल से हम कोसों दूर रहे हैं ।

परमात्मा के दर्शन, पूजन, भक्ति, जिनवाणी का श्रवण और उस वाणी के अनुसार जीवन में आचरण हमारे भव के बंधनों को तोड़ने में समर्थ है ।

परमात्मा महावीर ने आत्मिक सुख पाने के लिए साढ़े बारह वर्ष तक घोर साधना की थी । साढ़े बारह वर्ष में भगवान महावीर ने मात्र 349 दिन ही पारणे किये थें । उससे ज्यादा पारणे तो हम एक वर्ष में कर लेते हैं । भले हम में उतनी शक्ति नहीं है, फिर भी विधि के पालनपूर्वक शुद्ध आशय से की हुई थोडी भी आराधना भी आत्मिक प्रगति दिलाएगी ।

115

योग्यता अनुसार फलदायी है पानी और प्रभुवाणी

वाणी और पानी भी पात्र की योग्यता के अनुसार फलदायी है ।

वर्षा का पानी सर्वत्र एक समान बरसता है, परंतु समुद्र में गिरे तो खारा बन जाता है । पर्वत पर गिरे तो व्यर्थ जाता है । साँप के मुँह में गिरे, तो विष बनता है । गर्म शिला पर गिरे तो भाप बनकर उड़ जाता है । खेत में गिरे तो फसल उगने में काम आता है और स्वाति नक्षत्र में छीप के मुँह में गिरे तो पानी की बूँद मोती बन जाती है ।

वर्षा के पानी की कीमत उसके पात्र के आधार पर है, वैसे ही परमात्मा की वाणी भी योग्य जीवों को लाभकारी है । अयोग्य को प्राप्त हुई परमात्मा की वाणी भी आत्मा को पतन के गर्त में डुबो सकती है ।

पुण्य और पाप के बंध में काया की प्रवृत्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है, परंतु मन की वृत्ति ही महत्त्वपूर्ण है । आत्मा के पतन और उत्थान में सबसे महत्वपूर्ण है मन का ढलाव ।

यदि मन पाप से भरा है, विकार–वासनाएँ भरी हैं तो धर्मस्थानों में भी उसे पाप का बंध होगा, इसलिए मन की शुद्धि के साथ हमें धर्मस्थानों में प्रवेश करना चाहिए । मन के पापों का नाश नहीं होता है, तो भी हमें धर्मस्थानों का त्याग नहीं करना है, परंतु मन के पापों को नाश करने का अधिकाधिक प्रयत्न करना चाहिए ।

गर्म शिला पर गिरी पानी की प्रथम बूंद भाप बनकर उड़ जाती है, परंतु सतत उस पर पानी गिरता जाय तो वह शिला भी ठंडी हो जाती है । बस, इसी तरह प्रयत्न और पुरुषार्थ करने से मन की मलिनता का नाश हो सकता है और आत्मोन्नति की श्रेष्ठ योग्यता प्राप्त हो सकती है ।

मनुष्य-जन्म ही संसार पार करा सकता है

रेगिस्तान को पार करने के लिए मारुति कार काम नहीं लगती, उसे पार करने के लिए तो ऊंट ही जरूरी है । भले ही उस ऊँट की सवारी आरामदायक न हो ।

उसी प्रकार संसार रूपी रेगिस्तान को पार करने के लिए मनुष्य जन्म ही जरूरी है । फिर चाहे क्यों न मनुष्य शरीर गंदा क्यों न हो ।

मनुष्यशरीर की अनेक विचित्रताएँ हैं । भीतर मात्र गंदगी से भरा है । ऊपर चमकती चमड़ी हटा दी जाय तो उसे देखना या स्पर्श तो दूर, उसकी कल्पना भी पसंद नहीं पड़ती है । दुनिया के सभी कारखाने खूब अच्छे हैं, जिनका कच्चा माल (Raw Material) एकदम हल्का (Third Class) होता है परंतु पक्का माल (Production) खूब अच्छा होता है । परंतु शरीर रूपी कारखाना तो कितना गंदा है, जिसका कच्चा माल तो खूब अच्छा (first class) है, जबकि पक्का माल (Production) एकदम गंदा है ।

मनुष्य देह के संपर्क मात्र में आनेवाली वस्तु की कीमत समाप्त हो जाती है । जीभ पर स्पर्श करने के बाद कोई मिठाई किसी को दी जाय, वह लेना भी पसंद नहीं करता । दिन में खाया हुआ बादाम का शीरा कुछ समय बाद इतना गंदा हो जाता है कि कोई देखना भी पसंद नहीं करता है । अनेक प्रकार के रोगों का घर यह मनुष्य शरीर है । इस शरीर का अगर पोषण किया जाय तो ही पुष्ट होता है, यदि 2-4 दिन आहार देना बंद कर दे, तो यह कमजोर होने लगता है । इसका एक भी अंग कोई काम नहीं आता है, मरने के बाद जला दिया जाता है ।

इसके विपरीत देवताओं का शरीर गंदा नहीं है और जो इच्छा हो वे कार्य वे कर सकते हैं परंतु धर्म की आराधना में देवताई शरीर असमर्थ है । धर्म–आराधना मात्र मनुष्यशरीर से ही हो सकती है । ऐसे मनुष्य–जन्म को पाकर भी अज्ञानता के कारण हम धर्म–आराधना से वंचित रह जाते हैं ।

117 मौत से डरनेवाले को भी मौत छोडती नहीं है

तलवार म्यान में रहते हुए भी तलवार म्यान से अलग है, वैसे ही आत्मा शरीर में रहती हुई भी आत्मा शरीर से अलग है। आयुष्य पूर्ण होने पर आत्मा को शरीर छोड़ना पड़ता है, जिसे हम मौत कहते हैं।

इस जगत् में जो भी जन्म लेता है, उसे अवश्य मरना पड़ता है। परंतु मरण से डरने वाले को, मरण छोड़ता नहीं है। मरण पर विजय पाने के लिए समाधिमरण ही सर्व श्रेष्ठ उपाय है। समाधि–मरण को पाने के लिए दुष्कृतों की निंदा, सुकृतों की अनुमोदना एवं अरिहंतादि की शरणागति स्वीकार करनी चाहिए।

मुख्य रूप से स्वदुष्कृतों की निंदा में प्रतिबंधक राग भाव है। अन्य के सुकृत अनुमोदना में प्रतिबंधक द्वेष भाव है, एवं चतुःशरण गमन में प्रतिबंधक मोह है।

राग दूर होने पर स्वयं के दोष दिखाई देते हैं। द्वेष दूर होने पर अन्य के सुकृतों की अनुमोदना का भाव आता है, और मोह का नाश होने पर हमें अरिहंतादि में शरण्य बुद्धि होती है।

अपने पापों की निंदा करने से आत्मा पापों के बंधन से मुक्त होती है। स्व–पर के सुकृतों की अनुमोदना करने से विशिष्ट पुण्य का पुंज खड़ा होता है। उस पुण्य के आधार पर ही हमें जीवन में शांति, परलोक में सद्गति एवं धर्म की प्राप्ति हो सकती है। अरिहंतादि चार की शरण हमें भवसागर में निर्भय बनाती है। सागर चाहे कितना ही भयानक हो, जहाज में बैठने वाले को भय नहीं होता है, वैसे ही भवसागर चाहे जितना भयानक क्यों न हो अरिहंतादि की शरण में रहने वाले को कोई भय नहीं रहता।

भूल का स्वीकार अत्यंत कठिन है

अपनी भूल का स्वीकार करना, खूब कठिन है ।

रसोईघर में काम करते समय बहू के हाथों से कांच का बर्तन फूट जाय तो सास उसे भला–बुरा सुनाएगी । परंतु यदि वही बर्तन स्वयं के हाथों से फूट जाता है, तो वह अपना बचाव करते हुए कहेगी, 'कांच का बर्तन था एक दिन तो फूटने ही वाला था ।'

व्यवसाय में दो भागीदार नफा कमा लेते हैं तब दोनों उस नफे का यश अपनी–अपनी मेहनत को देंगे और यदि नुकसान हो जाय तो अन्य भागीदार पर दोष का टोपला डालेंगे ।

मानव मन का यह विचित्र स्वभाव है कि वह शुभ कार्य का यश खुद पाना चाहता है और अकार्य का अपयश अन्य व्यक्ति पर डालता है । स्वयं की गलती का स्वीकार करना अत्यंत कठिन है ।

मानव अपनी भूल को स्वीकार करना सीख ले तो जीवन में होने वाले सारे संक्लेश शांत हो जायें, परंतु अभिमान के कारण यह कार्य अत्यंत कठिन है ।

पशुओं का मुँह हमेशा झुका रहता है, जबकि मनुष्य का मुँह सीधा है । वह हमेशा अपना सिर उठा कर जीता है । सिर को झुकाने के लिए मनुष्य को बचपन से ही नमस्कार करना सिखाना पड़ता है ।

जो अपने जीवन में पूज्य व्यक्तियों को नमन नहीं करते हैं, कुदरत उन्हें हमेशा के लिए पशु योनि में जन्म देती है ।

चाहे-अनचाहे भी पशु को जिंदगी भर झुकना ही पडता है ।

119

साधु और श्रावक का गंतव्य स्थल एक ही है

जैसे बैंगलोर से मुंबई जानेवाली पैसेन्जर ट्रेन है और एक्सप्रेस ट्रेन भी है । दोनों की गति, सुविधा और भाड़े में भेद है, परंतु गंतव्य स्थान तो एक ही है ।

वैसे ही धर्म की आराधना में आगे बढ़ने के लिए साधुधर्म और श्रावकधर्म है । एक्सप्रेस ट्रेन की तरह साधुजीवन में जल्दी कर्मों का क्षय होता है जबकि श्रावकजीवन में पैसेन्जर ट्रेन की तरह पुण्य बंध के साथ अल्प कर्मों का क्षय है । दोनों की Speed में अंतर है, परंतु गन्तव्य स्थान तो एक ही–'मोक्ष' है ।

जिनमें साधुजीवन के स्वीकार की शक्ति नहीं है, उनके लिए श्रावकजीवन का आचरण बताया है ।

आज भले ही हमें साक्षात् तीर्थंकर भगवान प्राप्त नहीं हुए हैं, परंतु उनके नामस्मरण से वे आज भी हमारे संकट को दूर करते हैं, उनकी प्रतिमा के दर्शन से हमें हमारी आत्मा के सच्चे स्वरूप का बोध होता है, उनके जीवनचरित्र पढने से हमें जीवन की सच्ची दिशा मिलती है और उनकी वाणी से हमें भवभ्रमण को पार करने का सच्चा मार्ग प्राप्त होता है ।

काल कितना भी खराब क्यों न हो, जिसे परमात्मा का शासन प्राप्त हुआ है, तथा जिसे स्थापना रूप में प्रतिमा में साक्षात् परमात्मा की प्रतीति और आगमग्रंथों में परमात्मा की साक्षात् वाणी की प्रतीति होती हो, उसे भयंकर भवसागर में भी किसी भी प्रकार का भय रखने की जरूरत नहीं है ।

इस कलियुग में जिन प्रतिमा और जिनागम ही हमारे लिए परम आधारभूत साधन है ।

भगवान का जन्म तीन लोक को खुश करता है

जन्मा हुआ बालक सबसे पहले रोने का काम करता है, यदि वह न रोए तो प्रयत्न पूर्वक उसे रुलाया जाता है । रोने से शुरुआत हुए जीवन में हम रोते ही रहते हैं और रोते–रोते ही मरते हैं ।

परंतु आश्चर्य है कि जब परमात्मा जन्म लेते हैं, तब परमात्मा और उनकी माता को भी थोड़ी भी वेदना नहीं होती है । इतना ही नहीं, परमात्मा के जन्म के प्रभाव से नरक में रहे हुए नारक जीव भी क्षण भर के लिए सुख का अनुभव करते हैं । तिर्यंच और मनुष्य आनंदित होते हैं और देव तो परमात्मा का जन्म महोत्सव करने के लिए नाच उठते हैं । भगवान का जन्म तीनों लोक को खुश करता है ।

जन्मे हुए परमात्मा को इन्द्र महाराजा, पाँच रूप कर मेरुपर्वत पर ले जाते हैं और वहाँ आये 64 इन्द्र एवं करोडों देव–देवी, एक करोड़ साठ लाख कलशों से प्रभु का अभिषेक करते हैं । परमात्मा का अभिषेक करने के बहाने वे देवता अपनी आत्मा को निर्मल बनाते हैं ।

देवताओं के द्वारा की गई भगवान की भक्ति का अनुकरण करने की थोडी भी शक्ति मनुष्यों में नहीं है, फिर भी ऊँचे से ऊँचे द्रव्यों से की गई परमात्मा की पूजा हमारे भवभ्रमण का नाश करती है । हमारे चारित्र मार्ग में आनेवाले अन्तराय कर्मों का नाश करती है ।

अपने चारित्र के अंतरायों को तोडने के लिए प्रतिदिन उत्तम द्रव्यों से प्रभु की भक्ति करनी चाहिये ।

121 मन का समर्पण सबसे कठिन है

ट्यूबलाइट कितनी ही रंग–बिरंगी क्यों न हो, लाइट फिटिंग भी खूब बढ़िया हो, स्वीच भी दिखने में सुंदर हो, परंतु जब तक बिजली का संबंध न जुड़े, तब तक वह प्रकाश नहीं दे सकती । वैसे ही परमात्मा की पूजा–भक्ति में कितने ही द्रव्य ऊँचे क्यों न हों, स्तवना भी मधुर हो, परंतु मन का संबंध न हो तो किया हुआ प्रयास निष्फल है ।

परमात्मा को धन, वचन और काया का समर्पण आसान है, परंतु सबसे कठिन है मन का समर्पण ।

घर से बॉटा Bata के नए नए बूट पहनकर व्यक्ति मंदिर में देव–दर्शन करने जाता है, तब वह एक आँख से भगवान को देखता है, और दूसरी आँख से बूट को देखता है । उस समय तन तो टेम्पल में होता है, परंतु मन चप्पल में होता है ।

तीर्थयात्रा में यदि कोई वस्तु गुम जाती है तो आपको वह तीर्थयात्रा उस वस्तु के गुम जाने के कारण याद रहती है ।

जड़ पदार्थों की आसक्ति से की हुई धर्म–आराधना से हमें धर्म का वास्तविक फल प्राप्त नहीं हो सकता है । मन में रही जड़ पदार्थों की आसक्ति हो तो परमात्मा से प्रीति का संबंध कभी जुड़ नहीं सकता है ।

जब तक परमात्मा से प्रीति नहीं जुड़ती है तब तक हमारी आत्मा निर्भय अवस्था प्राप्त नहीं कर सकती है ।

आत्मा को निर्भय बनाने के लिए अरिहंतों को वंदना, अन्य जीवों के साथ बिगड़े हुए संबंध को सुधारना, सभी जीवों से क्षमापना और किये हुए पापों का त्याग करना चाहिए ।

सुख-दुःख की संवेदना का आधार आत्मा है

सुख–दुःख का संवेदन आत्मा को ही होती है, शरीर तो सुख–दुःख की संवेदना का साधन है । शरीर के द्वारा होने वाली प्रत्येक क्रिया आत्मा के आधार पर है ।

लाख रुपये के चैक वाले लिफाफे को सँभाल कर रखते हैं, परंतु जैसे ही उस लिफाफे में से चैक निकाल देते हैं, लिफाफे को कचरा पेटी में डाल देते हैं । यदि कोई व्यक्ति चैक को कचरा पेटी में डाल कर मात्र लिफाफे को सँभाले तो उसे मूर्ख ही कहेंगे ।

यह शरीर लिफाफे के समान है और आत्मा चैक के समान है । दुर्लभ मनुष्य–जन्म को प्राप्त कर जो व्यक्ति मात्र शरीर–केन्द्रित क्रियाएँ कर आत्मा को भूल जाता है, उसे ज्ञानी, मूर्ख ही समझते हैं ।

जो अंगोपांग सजीव व्यक्ति के पास हैं, वैसे ही अंगोपांग मुर्दे में भी है, परंतु मुर्दे की आँख देख नहीं सकती, कान सुन नहीं सकते, क्योंकि उस मुर्दे में आत्मा नहीं है ।

मुर्दे की श्मशान यात्रा होती है, तब लोग नारे लगाते हैं, 'राम नाम सत् है' परंतु वह हम किसे सुनाते हैं ? क्योंकि मुर्दे का सुनना तो बंद हो चुका है । जिसे सुनाते हैं, उसका सुनना बंद हो चुका है और जिसका सुनना चालू है, वह व्यक्ति सुनने को तैयार नहीं ।

आत्मा की चिंता भूलकर आज पूरा जगत् मात्र शरीर को सँभाल रहा है । शरीर को ही केन्द्र में रखकर व्यक्ति त्याग करता है और कष्टों को सहन करता है । आज विज्ञान ने खूब–खूब संशोधन किये हैं, परंतु मात्र शरीर के सुख–साधन के लिए । विज्ञान का केन्द्र आत्मा नहीं है । आत्मा का केन्द्र मात्र धर्म की आराधना है ।

जिसके जीवन के केन्द्र में आत्मा है, उसे शरीर के कष्ट विचलित नहीं कर सकते हैं । आत्मा का आनंद पाने के लिए नवपद की आराधना श्रेष्ठ उपाय है ।

123

प्रभु के अभिषेक से आत्मा निर्मल बनती है

दिव्य औषधियों से पाँच अभिषेक करते समय यह भावना करनी चाहिए, *'हे परमात्मा ! आपके जन्म–समय देव–लोक से इन्द्र महाराजा आपके पास आते हैं और पाँच रूप करके आपको भक्तिपूर्वक मेरुपर्वत पर ले जाते हैं । वहाँ अन्य देव क्षीर–समुद्र आदि से सुगंधित जल लाते हैं । रत्न आदि के बड़े–बड़े कलशों में वह जल भरकर आपका जन्माभिषेक करते हैं ।*

इस प्रकार मैं भी आपकी प्रतिमा पर उसी के प्रतीक रूप जल का अभिषेक करता हूँ । इस अभिषेक से मुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, ऐसी मैं प्रार्थना करता हूँ ।'

पंचामृत के अभिषेक के बाद निर्मल जल से प्रभुजी की जल–पूजा करनी चाहिए ।

प्रभु का जल से अभिषेक करते समय मन में यह भावना करनी चाहिए कि–

जिस प्रकार जल का स्वभाव मैल को दूर करना है, उसी प्रकार प्रभु का स्वभाव भी कर्म मैल को दूर करने का है । जल से बाह्य मैल दूर होता है, जबकि प्रभु तो अंतरंग मैल को दूर करते है ।

प्रभु जन्म समय तो इन्द्र महाराजा असंख्य देवताओं के साथ मेरुपर्वत पर आकर क्षीरोदधि के सुमधुर जल से प्रभु का अभिषेक करते हैं । मेरी ऐसी शक्ति नहीं है फिर भी उसके प्रतीक रूप यह अभिषेक कर रहा हूँ ।

124 सच्चा सुख साधना में है

प्रयोगशाला में किए गए प्रयोग से सुख के साधनों की शोध होती है, जिनसे भौतिक पदार्थ उपलब्ध कराए जाते हैं, परंतु उन साधनों से सुख प्राप्त होगा ही, ऐसा कोई निश्चय नहीं है ।

अध्यात्म की साधना द्वारा जो धर्म–आराधना की जाती है, उस साधना के फलस्वरूप आत्मिक सुख प्राप्त होता है ।

सच्चा सुख साधनों में नहीं साधना में है । जीवन में आरोग्य, धन या विशाल परिवार होने मात्र से व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता है । परंतु जिसके पास सद्‌बुद्धि रूप धन है, वह अपने जीवन में प्रतिकूल संयोग या परिस्थितियाँ खड़ी हो जाएँ तो भी वह किसी पर दोषारोपण नहीं करेगा बल्कि अपने ही अशुभ कर्म का उदय समझकर उन कष्टों को हँसते मुँह सहन करेगा ।

जिसके जीवन में सद्‌बुद्धि है, वह अमाप धन संपत्ति प्राप्त करके भी अभिमानी नहीं बनेगा । सुख आने पर वह मात्र अपने पुण्य के उदय को कारण मानेगा । अपनी संपत्ति का परोपकार में उपयोग करेगा ।

जीवन में धन-संपत्ति, आरोग्य, विशाल-परिवार आदि सुख के साधन मिलने पर भी जिस व्यक्ति के पास सद्‌बुद्धि नहीं है, ऐसा व्यक्ति न तो अपने जीवन में सुखानुभूति कर सकता है और न ही परलोक में सद्‌गति प्राप्त कर सकता है ।

सद्‌बुद्धि के फल स्वरुप ही जीवन में विवेक पैदा होता है । यह विवेक ही हमें उन्मार्ग से बचाता है और सन्मार्ग में स्थिर करता है ।

युवावस्था सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है

मध्याह्न के समय सूर्य सर्वाधिक प्रकाशमान होता है, उदय और अस्त समय में सूर्य अल्प प्रकाश वाला होता है, उसी प्रकार जीवन की तीन अवस्थाओं में युवा अवस्था सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है ।

जीवन का उत्थान युवानी में होता है, और पतन भी युवानी में ही होता है । बचपन में अज्ञानता के कारण कोई प्रगति नहीं तो वृद्धावस्था में ज्ञान होने पर भी शक्ति नहीं होने से प्रगति नहीं होती है । जीवन की तीन अवस्थाओं में, जिसका यौवन सुरक्षित है, उसका पूरा जीवन सुरक्षित है ।

बंदर के स्वभाव में चंचलता है, उसके साथ ही बंदर को शराब मिल जाए तो फिर तूफान मचाने में क्या कमी रखेगा ? युवावस्था भी बंदर की तरह चंचल है, इसके साथ यदि उसे विलासिता के साधन मिल जाएँ, तो फिर वह युवक अपने जीवन में उन्मत्त कैसे नहीं होगा ?

युवावस्था शक्तिशाली वय है, उसका सदुपयोग करे तो विकास के मार्ग में खूब आगे बढ़ा जा सकता है, और यदि दुरुपयोग करे तो आत्मा, पतन के गर्त में डूब जाती है और अनेक को भी विनाश के गर्त में डुबो देती है ।

आज तक जिन आत्माओं का अधः पतन हुआ हैं, वह यौवन वय में ही हुआ है और जिनका भी उत्थान हुआ है, वह प्रायः यौवन वय में ही हुआ । अतः युवावस्था में अपने जीवन में पूर्ण संयमित बनाने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए ।

126 पश्चाताप के आँसू जरुरी है

जब दुःखों को सहन करने की क्षमता पूरी हो जाती है, तब वह दुःख आँसू बनकर आँखों से बाहर आता हैं। जन्म से लेकर आज तक हमने खूब आँसू बहाए हैं। हमारे जीवन की शुरुआत और अंत भी रोने से होता है और जीवन में भी अनेक दुःखों के कारण रोना ही रोना है। परंतु इन दुःखों के आँसुओं की कोई कीमत नहीं है।

दुःख के आँसू तो आसान हैं, परंतु करुणा के आँसू और पश्चाताप के आँसू सबसे कठिन हैं।

अपने ऊपर उपसर्ग करने वाले संगम देव की आत्मा का विचार करते हुए भगवान महावीर की आंखों में करुणा के आंसू आए थे।

अपने पापों के पश्चात्ताप के आँसू तो होने ही चाहिए। संसार में रहते हुए कदम–कदम पर अनेक प्रकार की जीवहिंसा, चोरी, झूठ आदि के पाप होते रहते हैं, इनसे बचना कठिन है, परंतु इन पापों को धोने हेतु पश्चात्ताप के आँसू सर्वश्रेष्ठ उपाय हैं।

पश्चाताप एक ऐसा झरना है, जिसमें अनेक भवों के इकट्ठे हुए कर्मों को धोकर आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकती है।

अंतः करण से अपने पाप के तीव्र पश्चात्ताप के फल स्वरुप खंधक मुनि की हत्या का आदेश करनेवाले राजा का भी उसी भव में उद्धार हो गया।

जीवन में पाप का सर्वथा त्याग न हो सके तो भी अपने हृदय में पाप के पश्चात्ताप का भाव तो अवश्य होना चाहिए।

(127) समाधान में ही सच्चा सुख है

सुख का आधार बाह्य संपत्ति और वैभव नहीं है । बाह्य संपत्ति की वृद्धि से सुखानुभूति होती हो तो, जितने भी धनवान व्यक्ति हैं, वे सब सुखी होने चाहिए, जबकि अधिकांश धनी व्यक्ति हमें भीतर से दुःखी ही नजर आते हैं । उनके इर्द-गिर्द समाधान नहीं किन्तु समस्याओं के जाले बुने हुए दिखाई देते हैं । इससे सिद्ध होता है कि सुख की आधारशिला संपत्ति नहीं किन्तु चित्त की प्रसन्नता है । चित्त की प्रसन्नता का आधार है–''समाधान वृत्ति ।''

जो व्यक्ति हर परिस्थिति, हर संयोग और हर घटना का सहजता से स्वीकार कर लेता है, वह अपने जीवन में मस्ती का अनुभव कर सकता है ।

जिस व्यक्ति के पास समाधान वृत्ति नहीं है, वह करोड़ों की संपत्ति होने पर भी भिखारी के समान है । असंतुष्ट मनोवृत्ति के कारण अमाप संपत्ति के बीच भी वह दीन ही बना रहता है । जो धनवान है वह एकांततः सुखी नहीं है । सुख का रहस्य एक मात्र संतोष है । इसीलिए कहा है, **'संतोषी नर सदा सुखी ।'**

अपने शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार परिस्थितियों का निर्माण होता हैं, उन परिस्थितियों को बदलना अपने वश की बात नहीं है, परंतु उन परिस्थितियों में मानसिक समाधान करना, यह तो हमारे ही वश में है । जिसके पास 'समाधानवृत्ति' है, वह हर संयोग में खुश रह सकता है ।

128 जीवन को विलासी न बनाएँ

एक सद्गृहस्थ को जीवन जीने के लिए अनेकविध वस्तुओं की जरूरत रहती है । दुनियाँ में मिलने वाली उन वस्तुओं को तीन भागों में बांट सकते हैं–

(1) आवश्यक वस्तुएं– जिस वस्तु के बिना जीवन जी नहीं सकते है । जैसे-कपड़े, भोजन, घर आदि ।

(2) अनुकूल वस्तुएं– जीवननिर्वाह में कुछ सुविधाजनक वस्तुएँ ऐसी होती है जिनका उपयोग जरूरी नहीं, किंतु सुविधाजनक होता है ।

(3) विलासी वस्तुएं– जिन वस्तुओं के बिना हमारा जीवन निर्वाह आसानी से हो सकता है, किंतु एक मात्र अपनी संपत्ति के प्रदर्शन और अपने बड़प्पन को दिखाने के लिए अत्यंत ही कीमती वस्तुओं का उपयोग किया जाता है ।

यदि आत्मनिरीक्षण करें तो पता चलेगा कि जीवन में आवश्यक और अनुकूल वस्तुओं पर जितना धन व्यय होता है, उससे भी ज्यादा व्यय विलासी वस्तुओं में होता है ।

विलासी जीवन पापमय होने से अत्यंत खतरनाक है अतः जीवन को सात्त्विक मार्ग में जोड़कर विलासी बनने से बचाए ।

जैन सिद्धांत नहीं बदलते हैं

तारक परमात्मा ने आत्म–कल्याण के लिए जो उत्कृष्ट साधुजीवन बताया है, उस जीवन में हमेशा पैदल विहार की आज्ञा है ।

एक ही दिन में हजारों K.M. की दूरी पार करने के साधन उपलब्ध होने पर भी आज के युग में पादविहार की बातें करना, शायद आप लोगों को अटपटी लग सकती है ।

परन्तु वीतराग परमात्मा के सिद्धांत तो त्रिकाल अबाधित हैं । समय बदलेगा परन्तु जैन सिद्धान्त नहीं बदलेंगे ।

2500 वर्ष पूर्व भी जैन साधु पैदल विहार करते थे और आज भी पैदल ही विहार करते हैं । भविष्य में भी मुक्तिमार्ग के साधक मुनिवर तो पैदल ही विहार करेंगे ।

समय के परिवर्तन के साथ बहुत कुछ बदलता रहता है–परन्तु जैन सिद्धान्त नहीं बदलते हैं ।

प्रभु ने साधु को एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए पादविहार का मार्ग बताया है, जिसके अनेक फायदे हैं । कहीं भी जाने के लिए जब हम वाहन का प्रयोग करते हैं, तो उसमें अनेक जीवों की हिंसा होती है, जबकि पादविहार में जीवदया का पालन होता है ।

जो सर्वज्ञ और त्रिकाल ज्ञानी है उन्होंने अपने आत्महित के लिए जो भी मार्गदर्शन दिया है, उसमें परिवर्तन के लिए अवकाश नहीं है ।

130

वर्षीतप

जीवन जीने के लिए प्रत्येक प्राणी को भोजन की आवश्यकता रहती है । प्रत्येक प्राणी को अपनी क्षुधातृप्ति के लिए भोजन करना पड़ता है । पेट भरने के लिए जब चाहे दिन–रात व्यक्ति कुछ भी खाता है । जन्म से ही भोजन की आवश्यकता होने पर भी उचित भोजन के विषय में लोगों को खूब कम जानकारी है । इस लापरवाही के कारण आज व्यक्ति बड़ी बीमारियों को मोल लेता है ।

भोजन के संबंध में भारतीय ऋषि–मुनियों ने हमें बहुत सारी जानकारी दी है । सैकड़ों वर्षों से चली आ रही भारतीय संस्कृति की भोजन संबंधी परंपराएँ खूब वैज्ञानिक हैं । परंतु खेद की बात है कि पश्चिमी संस्कृति के अनुकरण में हमने उन परंपराओं को भुला दिया है ।

धर्मशास्त्र कहते हैं कि, देह से धर्म की साधना के लिए देह को टिकाना जरूरी है, अतः इस शरीर को आहार देना जरूरी है । परंतु वह आहार हितकारी, परिमित और अल्प होना चाहिए ।

प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान ने दीक्षा स्वीकार कर 400 दिनों तक निर्जल उपवास किये थे ।

चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी ने अपने साढ़े बारह वर्ष की साधना में साढ़े ग्यारह वर्ष तक उपवास किये थे । परंतु वह शक्ति हमारी नहीं है । उनके द्वारा की गई तपश्चर्या का अंश भी हम अनुकरण नहीं कर सकते ।

फिर भी आदिनाथ भगवान के 400 दिन के उपवास के आंशिक अनुकरण रूप एकांतर उपवास करते हुए 400 दिनों में वर्षीतप किया जाता है ।

करोड़ों जन्मों के पाप नाश करती है- परमात्म-स्तवना

संसार में भटकती आत्मा को प्रभु दर्शन की प्राप्ति अतिदुर्लभ है । वे आत्माएँ धन्य हैं, जिन्हें साक्षात् परमात्मा की प्राप्ति हुई है । हमें साक्षात् परमात्मा की प्राप्ति न ही हुई है परंतु प्रतिमा रूप में उनकी उपस्थिति हमारे लिए उनका साक्षात्कार कराने में समर्थ है । साथ ही अनेक धर्मशास्त्र हमें उनका परिचय कराते हैं ।

शास्त्रों में कहा है कि तीर्थंकर भगवान के जीवन–चरित्र का श्रवण–पठन करने से हमारे करोड़ों भवों के पापों का नाश होता है ।

वे आँखें धन्य हैं, जिन्हींने परमात्मा के दर्शन किये हैं । वे कान भी प्रशंसनीय हैं, जिन्होंने परमात्मा के वचनों का श्रवण किया है । मानवदेह में रहे अंगों की सच्ची सार्थकता तभी है, जब वे परमात्मा में एकाकार होते हैं ।

जिस हृदय में परमात्मा का वास है, वह हृदय भी अत्यंत प्रशंसनीय है ।

आत्मा पर छाये हुए अज्ञान एवं मिथ्यात्व के अँधेरे को दूर करने के लिए परमात्मा ही शरण्य है ।

अपने जीवन में सर्वोच्च साधना के द्वारा जिसने शाश्वत सुख को प्राप्त किया है, ऐसे परमात्मा हमें भी शाश्वत सुख प्राप्त कराते है ।

जो चरण प्रभु दर्शन की ओर अपना कदम उठाते है, वे चरण भी धन्यवाद के पात्र बन जाते हैं ।

ऋषभदेव प्रभु का सबसे लंबा शासन

इस अवसर्पिणी में हुए चौबीस तीर्थंकरों में सबसे पहले श्री ऋषभदेव हुए, जिन्होंने 18 कोडा कोड़ी सागरोपम के धर्म के विरह का अंत कर धर्म का प्रवर्तन किया ।

तीर्थंकर भगवान की विशेषता कैसी ? उनके जन्म समय उनको या उनकी माता को लेश भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता । जन्मे हुए परमात्मा का 64 इन्द्र एवं करोड़ों देवता मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक करते हैं ।

राजपरिवार में जन्मे परमात्मा को अपने जीवन में लेश भी दुःख नहीं था । फिर भी सुख के साधनों को छोड़ कर त्यागमार्ग पर चल पड़े । वे अपने त्याग और तप के फलस्वरूप अपने घाती कर्मों का क्षय कर धर्म तीर्थ की स्थापना करते हैं ।

ऐसे साक्षात् तीर्थंकर को जिसने पाया है, उन्हें देखा है, या उन्हें सुना है, वे व्यक्ति धन्य है । इतना ही नहीं बल्कि उनके द्वारा स्थापित धर्म की प्राप्ति भी जिसे हुई है, वे भी धन्य है ।

आत्मा के उद्धार में प्रत्येक आत्मा के लिए तीर्थंकर भगवान अथवा उनके द्वारा स्थापित किया गया शासन अवश्य उपकारी है ।

इस चौबीसी में सबसे ज्यादा आत्माएँ भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी के शासन में मोक्ष में गई हैं । पचास लाख करोड सागरोपम तक चले उनके शासन में असंख्य आत्माएँ मोक्ष में गई हैं ।

चौथे आरे के आधे समय तक ऋषभदेव प्रभु का शासन चला है ।

बड़ा भिखारी मंदिर में बड़ी भीख माँगता है

आदमी जब रात में सोता है तब वह 3 फूट x 6 फूट की जगह में सोता है, परंतु जगने पर उसे छह खंड का साम्राज्य भी छोटा लगता है । जैसे–जैसे व्यक्ति की इच्छा–पूर्ति होती है, वैसे–वैसे उसका लोभ बढ़ता जाता है ।

जमीन के खड्डे को मिट्टी से भरा जा सकता है, पेट का खड्डा पाव सेर आटे से भरा जा सकता है, परंतु मन के खड्डे को भरना अत्यंत कठिन है । चाहे जितनी संपत्ति प्राप्त हो, मन को कभी तृप्ति नहीं होती है ।

मन की इच्छा को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति जहाँ–तहाँ भीख माँगता रहता है । भिखारी दो प्रकार के होते है ! एक भिखारी मंदिर के बाहर रहकर मात्र अपना पेट भरने के लिए भीख माँगता है परंतु दूसरा बड़ा भिखारी मंदिर के बाहर नहीं, परंतु मंदिर के भीतर जाकर, भगवान की पूजा कर सत्ता, संपत्ति और शक्ति पाने के लिए बड़ी भीख माँगता है ।

भगवान के पास भौतिक सुखों की भीख माँगने के लिए नहीं, परंतु भगवान जैसा गुणवान बनने के लिए जाना है । यदि भीख माँगनी है तो परमात्मा के पास सद्गुणों की भीख माँगें । जिस स्थिति को स्वयं परमात्मा ने प्राप्त किया है, उस स्थिति को पाने की प्रार्थना करें ।

दुनिया इच्छापूर्ति में सुख मानती है परंतु भगवान ने इच्छापूर्ति में सुख के बदले दुःख कहा है । सच्चा सुख इच्छापूर्ति में नहीं बल्कि इच्छा मुक्ति में है ।

इच्छामुक्ति को पाने के लिए भगवान ने संयम जीवन का मार्ग बताया है । इच्छाओं को रोककर आत्मा में लीन बनने के लिए संयम जीवन का स्वीकार ही एक उपाय है । भौतिक सुखों में डूबे इस जगत् में आज भी भगवान के द्वारा बताया हुआ मार्ग सद्गुरु भगवंतों के द्वारा हमें प्राप्त होता है ।

जो आत्मा को भवसागर से तिराए वह तीर्थ

पंद्रह कर्मभूमियों में जिस तीर्थ के समान कोई अन्य तीर्थ नहीं है ऐसा शत्रुंजय महातीर्थ हमें खूब आसानी से प्राप्त हुआ है–यह हमारा परम सौभाग्य है ।

भूतकाल में इस तीर्थ के कंकड–कंकड का स्पर्श कर एवं इस तीर्थ के पावन आलंबन को पाकर अनंतानंत आत्माएँ मोक्षपद को प्राप्त हुई हैं ।

फाल्गुण शुक्ला त्रयोदशी के शुभ दिन कृष्ण महाराजा के पुत्र शांब और प्रद्युम्न अपने आठ करोड़ पचास लाख के साधु परिवार के साथ में शत्रुंजय तीर्थ से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ।

वैसे तो तीर्थ क्षेत्र की यात्रा हमें हमेशा करनी चाहिए कुछ दिन विशेष होते हैं, जैसे आज का दिन–फाल्गुन सुदि-13 का दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण है । हजारों श्रद्धालु आज के दिन इस तीर्थ की यात्रा करते हैं जिसमें छह गाऊ (कोश) के विस्तार में फैले इस पर्वत की प्रदक्षिणा देते हैं । तो उन श्रद्धालुओं की भक्ति के लिए सिद्धवड में अनेक प्रकार के भक्ति पंडाल भी बनाए जाते हैं ।

प्रत्येक धर्म में तीर्थ की यात्रा खूब महत्त्व रखती है । तीर्थ का अर्थ करते हुए आगमशास्त्रों में कहा है, जो हमारी आत्मा को भव–सागर से तैरने के लिए सर्वश्रेष्ठ आलंबन हो वह तीर्थ है–जिनमें शत्रुंजय महातीर्थ सबसे श्रेष्ठ है ।

3750 सीढ़ियों को पारकर जब भक्त श्रद्धालु इस गिरिराज पर पहुँचता हैं तब जैसे ही परमात्मा के दर्शन पाते हैं, तब उसकी सारी थकावट क्षण में दूर हो जाती है । मात्र शरीर की थकावट नहीं परंतु इस तीर्थ की यात्रा, आत्मा की थकावट को दूर करने में सर्वश्रेष्ठ उपाय है ।

स्वार्थी न बनें

चार कषायों को पहचान कर ही हम धर्म में प्रगति कर सकेंगे ।

आज भारतभर में कई पांजरापोलें हैं, जहाँ निराश्रित मूक प्राणियों का पालन–पोषण होता है । बात यहीं तक नहीं रुकी । मानव की स्वार्थवृत्ति आगे बढ़ने लगी । अभी तक वह पशुओं के प्रति स्वार्थपूर्ण व्यवहार करता था । अब स्वार्थवृत्ति का दायरा बढ़ने लगा और अपने जन्मदाता उपकारी माता–पिता को भी स्वार्थवृत्ति से देखने लगा ।

जब तक माता–पिता के पास धनदौलत हो...जब तक वे काम करने में समर्थ हों, तब तक उनके साथ अच्छा संबंध और जब वे अशक्त हो जाएँ...तो उन्हें आधुनिक पांजरापोल अर्थात् वृद्धाश्रम में भेज दिया जाता है । यह कैसी विचित्र बात है ?

जिन वृद्धों के कारण परिवार की शोभा थी, जिनको परिवार का मुखिया मानकर हर प्रसंग में उनकी सलाह ली जाती थी, आज उन्हीं वृद्धों को वृद्धाश्रम में भेजा जाता है ।

जिस प्रकार बाल्यावस्था में बालक को अपने माँ-बाप से अपेक्षा रहती है, उसी प्रकार वृद्धावस्था में माँ–बाप को अपने पुत्रों से अपेक्षा रहती है । भोजन पैसों से खरीदा जा सकता है, पर प्रेम नहीं ।

जो व्यक्ति अपने वृद्ध माता-पिता की उपेक्षा करता है उस व्यक्ति को भविष्य में कदम कदम पर ठोकरें ही खानी पडती है ।

दुःख का मूल पाप है

जब तक जीवन में ''मैं'' और ''मेरा'' स्वार्थ भाव है, तब तक जीवात्मा धर्म की आराधना करते हुए भी संसार को ही पुष्ट करता है । सामान्य से त्याग करना धर्म है, परंतु त्याग के पीछे, शरीर की पुष्टि का लक्ष्य हो, तो वह धर्म भी कर्मों का बंध कराता है । मोह राजा को जीतने के लिए हमें इस स्वार्थ भाव का नाश कर परमार्थ के लिए प्रयत्न करना होगा ।

आज न्यायालयों में उसी व्यक्ति को सजा होती है, जिसका गुनाह कानूनन सिद्ध हो । परंतु कर्मसत्ता के न्यायालय में मात्र गुनाह करनेवाले को नहीं परंतु उसे कराने और उसमें सम्मिलित होने वाले को भी सजा होती है ।

न्यायालयों में तो मात्र काया के पापों की सजा होती है, परंतु कर्मसत्ता तो मन, वचन और काया के द्वारा किये गए पापों की भी सजा करती है ।

संसार में जितना भी दुःख है, उसका मूल पाप है । पाप का नाश होने पर दुःख का नाश खूब आसान है । पापों का नाश करने के लिए पापों के द्वारों को बंद करना पड़ेगा । उन पापों के त्याग की प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी ।

देवलोक में रहे देवता भी उनको नमस्कार करते हैं, जो सभी पापों का त्याग कर विरति धर्म की आराधना करते हैं ।

इन्द्र महाराजा भी अपने सिंहासन पर बैठने के पूर्व विरतिधर आत्माओं को भावपूर्वक नमन करते है ।

137 प्रगति के साथ सही दिशा भी जरूरी है

मनुष्यजन्म का सबसे बड़ा उद्देश्य आत्मा की साधना है, परंतु जगत् के अधिकांश लोग इस सत्य को भूलकर, अज्ञानता के कारण धन, स्वजन और सत्ता पाने में अपना समय व्यर्थ गँवा देते हैं । इस अज्ञान को दूर कर शाश्वत सत्य को पाने में ही मनुष्य जन्म की सफलता है ।

भारतीय संस्कृति को जितना नुकसान मुगलों ने किया है उससे भी ज्यादा नुकसान अंग्रेजों ने किया है ।

मुगलों ने तलवार की नोक पर धर्म परिवर्तन कराया, अनेक मंदिरों का ध्वंस हुआ परंतु लोगों के हृदय में धर्म के प्रति श्रद्धा जीवित थी, इसलिए एक मंदिर टूटने पर अनेक नये मंदिरों का निर्माण हो जाता था । मुगल साम्राज्य में भारतीय संस्कृति सुरक्षित थी, क्योंकि लोगों के हृदय में धर्मश्रद्धा मजबूत थी ।

परंतु अंग्रेजों ने न तो तलवार की नोक पर धर्म–परिवर्तन कराया, न ही किसी मंदिर का नाश किया । फिर भी नुकसान सबसे ज्यादा हुआ, क्योंकि अंग्रेजों ने अपने शिक्षण के प्रचार द्वारा भारतीय प्रजा के हृदय में रही धर्मश्रद्धा को नष्ट दिया ।

150 वर्ष के साम्राज्य में अंग्रेजों को हम नहीं बदल पाये, परंतु हमारी भोली भारतीय प्रजा को अंग्रेजों ने पूरा बदल दिया । हमने किसी अंग्रेज को धोती पहनाना नहीं सिखाया परंतु आज प्रत्येक भारतीय की वेशभूषा अंग्रेजों के अनुकरण वाली हो गई ।

जीवन में प्रगति के साथ सही दिशा भी चाहिए, जिसके लिए भारतीय संस्कृति के मौलिक गुणों का प्रचार–प्रसार ही उपाय है ।

जिनवाणी का श्रवण अवश्य करें

आग की एक छोटी–सी चिनगारी की भी उपेक्षा मत करना, क्योंकि दिखने में यह छोटीसी चिनगारी चन्द क्षणों में भयंकर दावानल का रूप ले सकती है और भयंकर विनाश ला सकती है ।

क्रोध की छोटीसी चिनगारी को क्षमा के जल से शीघ्र शान्त नहीं किया जाय तो वह आत्मा की चिर–समाधि को क्षण भर में भस्मीभूत कर सकती है ।

श्रावक को जिनवाणी का श्रवण अवश्य करना चाहिए । अपेक्षा से जिनपूजा से भी जिनवाणी का श्रवण का अधिक महत्त्व है । परमात्मा की पूजा अवश्य करनी चाहिए, परन्तु जिनपूजा व जिनवाणी का प्रसंग एक साथ आ जाए तो प्रथम जिनवाणी का श्रवण करना चाहिए ।

वर्तमान काल में श्रावक जीवन में से स्वाध्याय लगभग समाप्त हो गया है । जबकि मोक्षमार्ग को जानने, समझने के लिए 'जिनवाणी' ही सक्षम माध्यम है । जिनवाणी का नियमित श्रवण करने से जीवन में संवेग और वैराग्य भाव की अभिवृद्धि होती है ।

आज कई लोग मंदिर में घंटों परमात्मा की पूजा–भक्ति करते हैं, परन्तु जिनवाणी का श्रवण नहीं करते हैं, यह उचित नहीं है । आज पूजा करने वाले बहुत होंगे, परंतु व्याख्यान सुननेवाले बहुत कम ।

मोक्षमार्ग की आराधना–साधना में आगे बढ़ने के लिए देव और गुरु दोनों का आलंबन जरूरी है ।

क्षणिक सुख का आकर्षण अनुचित है

प्रभु की चार आज्ञाओं का पालन करना चाहिए ।

छोड़ने लायक को छोड़ना चाहिए, अथवा छोड़ने जैसा है, ऐसा मानना चाहिए ।

करने लायक वस्तु करनी चाहिए अथवा करने योग्य है, ऐसी मान्यता होनी चाहिए ।

जो प्रशंसनीय है, उसकी ही प्रशंसा करनी चाहिए ।

सुनने लायक चीज ही सुननी चाहिए । जिसे सुनने से आत्मा को नुकसान होता हो, ऐसा नहीं सुनना चाहिए ।

अपनी आत्मा के संसार–परिभ्रमण की जड़ मिथ्यात्व अर्थात् बुद्धि का विपर्यास है । इस मिथ्यात्व के उदय के कारण आत्मा को इस संसार के बंधन में से मुक्त होने की इच्छा ही नहीं होती है । उसे तो इस भयंकर दुःखमय संसार में भी यदा–कदा जो क्षणिक व तुच्छ सुख मिल जाता है, उसी को पाकर तृप्ति होती है । अथवा यों कहिए कि उस क्षणिक सुख को देखने के कारण उसे यह संसार दुःखरूप नहीं लगता है ।

पुण्य के उदय से जो सुख मिले हैं, उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति की जा सकती है, जबकि मोक्ष का सुख तो परोक्ष है, अतः उसे मोक्षसुख को पाने की कल्पना ही नहीं होती है ।

मोह के तीव्र आवरण और अज्ञानता के कारण आत्मा को मोक्ष की बातें पसंद नहीं पड़ती हैं । अरे ! 'मोक्ष' शब्द–श्रवण में भी उसे उद्वेग हो जाता है । मोक्ष की बातों में उसे कोई रुचि, रस नहीं होता है ।

140 प्रभु-भक्ति का फल मन की प्रसन्नता है

पारसमणि के संग से लोहा सोने में बदल जाता है, परंतु परमात्मा की विशेषता ऐसी है कि वे अपनी शरण में आने वाले को अपने तुल्य बना देते हैं ।

एक मात्र भगवान महावीर को प्राप्त कर 9 (नौ) आत्माओं ने तीर्थंकर पद प्राप्त किया और हजारों आत्माएँ मोक्ष को प्राप्त हुईं । परमात्मा की करुणा अपरंपार है । उसे प्राप्त करने के लिए हमें हमारी आत्मा में योग्यता पैदा करनी पड़ेगी ।

सामान्य व्यक्ति को नमस्कार करने से कुछ–न–कुछ फल की प्राप्ति होती है, तो परमात्मा तो अपना सर्वस्व देने के लिए तैयार है, उनको किया गया नमन–पूजन हमें क्या नहीं देगा ! अर्थात् सारी संपत्ति और सर्वोच्च सुख देगा ।

बस, जरूरत है मात्र शुद्ध आशय की । परमात्मा ने जो छोडा है, वह छोडने के लिए तथा प्रभुने जो पाया है, वह पाने के लिए जाना है । हमारी हालत तो ऐसी है कि हम परमात्मा के पास भी संसार का भौतिक सुख ही माँगते हैं ।

आत्मिक सुख की चाह में की गई परमात्मभक्ति हमें अवश्य आत्मिक सुख देगी, इतना ही नहीं परंतु इस लोक के सुख एवं परलोक में सद्गति भी देगी । उससे भी विशेष हमारे मन की प्रसन्नता बनी रहेगी ।

परंतु आशय शुद्ध न होने पर हम मात्र भौतिक सुखों को पाने की चाह में सच्चे आत्मिक सुख एवं मन की प्रसन्नता को पाने से वंचित रह जाते हैं ।

आशय शुद्धि हो तो छोटा अनुष्ठान भी महान लाभ का कारण बनता है ।

आत्मा की अष्ट सिद्धि को प्रदान करता है 'सिद्धितप'

तप धर्म की आराधना का मुख्य हेतु है–देह के ममत्व का त्याग करना। अनादि काल से संसारी आत्मा को स्वदेह पर अत्यंत ममत्व है । स्वदेह पर रहे अत्यंत राग के कारण ही आत्मा अनेकविध पाप का आचरण करती है ।

स्वदेह में आत्मबुद्धि के कारण मिथ्यात्व से ग्रस्त आत्मा, देह की पुष्टि के लिए हिंसा–अहिंसा का विचार नहीं करती है। पुण्य-पाप का विवेक नहीं करती है । स्वदेह में आसक्त व्यक्ति दूसरे के सुख-दुःख का लेश भी विचार नहीं करता है । इस प्रकार अनेकविध पापों के आचरण से आत्मा नये-नये कर्मों का अर्जन करती है और संसार के बंधनों में गिरकर अनेकविध दुःखों का अनुभव करती है ।

जब सद्गुरु के समागम से सन्मार्ग की प्राप्ति होती है और आत्म–स्वरूप का ज्ञान होता है, तब आत्मा मिथ्यात्व रोग से मुक्त बनती है । इस प्रकार आत्मा के शुद्धात्म स्वरूप के बोध से देह और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान होता है । देह से भिन्न आत्मा, देह के भयंकर दुःखों को भी ज्ञाता-दृष्टा भाव से सहन करती है । इस प्रकार सम्यक्तप के आसेवन से आत्मा देह के नाश में तनिक भी दुःख का अनुभव नहीं करती है ।

देह-ममत्व के त्याग बिना आत्म-सुख का संवेदन शक्य नहीं है और सम्यक्तप के आसेवन बिना देह ममता का त्याग शक्य नहीं है। तप धर्म के निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति धीरे-धीरे सहनशील बनता है और देह के दुःखों को हँसते–हँसते सहन करता है ।

आत्मा की अष्ट सिद्धि और अष्ट कर्मों का विनाश करने वाला सर्वश्रेष्ठ तप-सिद्धितप है। भगवान महावीर के जीवन को आदर्श मानकर तप, जप और स्वाध्याय की आराधना में जुड़ना चाहिए ।

142 कर्म के मर्म को नष्ट करता है पर्युषण पर्व

जैन शासन का उत्कृष्ट महान् पर्व पर्युषण है । यद्यपि प्रति मास कोई–न–कोई पर्व आता ही है, परंतु पर्युषण पर्व से बढ़कर अन्य कोई पर्व नहीं है । इसी कारण इस पर्व को पर्वाधिराज कहा गया है ।

जिस प्रकार बंदूक की गोली इन्सान को खत्म कर सकती है, बशर्त वह मर्मस्थल पर लगे, इसी प्रकार कर्म को नष्ट करने के लिए, उसके मर्मस्थल पर प्रहार होना चाहिए । आठ कर्मों में मर्मभूत मोहनीय कर्म है । साधना का हमला यदि मोहनीय कर्म पर होता है, तभी साधना सफल मानी जाती है ।

पर्वाधिराज महापर्व की आराधना में करणीय पांच मुख्य कर्तव्य हैं, अहिंसा की उद्घोषणा, साधर्मिक वात्सल्य, क्षमापना, अट्ठाई तप एवं चैत्यपरिपाटी । इन कर्तव्यों का पालन करते हुए शक्ति हो तो अट्ठाई तप के साथ 64 प्रहर के पौषध की आराधना करना सर्वश्रेष्ठ है ।

किसी भी पुण्य और पाप के बाद यदि अनुमोदना की जाय तो उस पुण्य और पाप की शक्ति का गुणाकार होता है और यदि पश्चात्ताप किया जाय तो उस पुण्य और पाप की शक्ति का भागाकार होता है ।

हमारे जीवन में पुण्य की शक्ति को बढ़ाने के लिए शुभ कार्यों की अनुमोदना होनी चाहिए, तो साथ में पाप की शक्ति को घटाने हेतु अपने किये हुए पाप कर्मों का गुरुभगवंत के समक्ष पश्चात्ताप करना चाहिए ।

पर्युषण के अंतिम दिन जो संवत्सरी प्रतिक्रमण करना है, उसके पूर्व हमें हमारे सारे पापों की शुद्धि तथा सारे वैर-विरोध की क्षमापना करनी चाहिए । पाप की प्रवृत्ति का पश्चाताप पूर्वक त्याग कर पुनः स्वभाव में लौटना ही सच्चा प्रतिक्रमण है ।

वार्षिक ग्यारह कर्तव्यों से जीवन धर्ममय बनाएँ

प्रत्येक श्रावक को अपने जीवन में वर्ष दरम्यान ग्यारह वार्षिक कर्तव्यों का पालन अवश्य करना चाहिए ।

ग्यारह वार्षिक कर्तव्यों में सबसे पहला कर्तव्य 'संघ पूजा' है । संघ का अपनी आत्मा पर महान् उपकार है । हम जो कुछ भी आराधना कर पाते हैं, उसमें संघ का असीम उपकार है । साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ हमें मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ने में सहायक है ।

2. साधर्मिक भक्ति :– समानधर्मी श्रावक-श्रविका की भक्ति करनी चाहिए, तथा जो साधर्मिक कमजोर हो उसे आर्थिक सहयोग करना चाहिए ।
3. यात्रा त्रिक :– अट्ठाई महोत्सव, स्थयात्रा और छ'री के नियमपूर्वक तीर्थयात्रा करनी चाहिए ।
4. स्नात्र महोत्सव :– ठाट-बाट से परमात्मा का स्नात्र महोत्सव करना चाहिए ।
5. देवद्रव्यवृद्धि :– अपने धन को यथाशक्ति परमात्मा को अर्पण करना चाहिए ।
6. महापूजा :– परमात्मा के मंदिर का शणगार करना चाहिए ।
7. रात्रिजागरण :– परमात्मा की भक्ति करते, में पूरी रात्रि व्यतीत करनी चाहिए ।
8. श्रुत भक्ति :– धर्म के आधारस्तंभ रूप श्रुत ज्ञान के रक्षण तथा पुनर्लेखन आदि से श्रुतज्ञान की भक्ति करनी चाहिए ।
9. उद्यापन :– किसी भी तप आदि के निमित्त रत्नत्रय के उपकरणों का उद्यापन करना चाहिए ।
10. शासन प्रभावना :– धर्म की प्रभावना हो ऐसे शुभ कार्य करने चाहिए ।
11. आलोचना :– वर्ष भर में हुए अपने सभी पापों की सद्गुरु के समक्ष आलोचना कर प्रायश्चित करना चाहिए ।

पर्युषण में करे अट्ठाई तप

देहममत्व के त्याग बिना आत्मसुख का संवेदन शक्य नहीं है, परंतु स्वदेह में आत्मबुद्धि के कारण मिथ्यात्व से ग्रस्त आत्मा, देह की पुष्टि के लिए हिंसा-अहिंसा का विचार नहीं करती है ।

मात्र देह में आसक्त आत्मा, दूसरे के सुख-दुःख का लेश भी विचार नहीं करती है । इस प्रकार अनेकविध पापों के आचरण से आत्मा नये-नये कर्मों का अर्जन करती है और संसार के बंधनों में गिरकर अनेकविध दुःखों का अनुभव करती है ।

आज तक हमें आत्मा का प्रेम नहीं जगा है, इसलिए हमारी सभी क्रियाओं का मुख्य केंद्र शरीर रहा है, आत्मा नहीं । शरीर को केंद्र में रखते हुए हम डॉक्टरों की सभी आज्ञाओं का पालन करते हैं, परंतु आत्मा के डॉक्टर ऐसे देव-गुरु और धर्म की आज्ञा का पालन नहीं करते हैं ।

अपने शरीर को एक नौकर की तरह समझना चाहिए । जैसे नौकर को दिए हुए वेतन को हम पूरी तरह वसूल करते हैं, वैसे ही शरीर को दिये भोजन आदि से आत्मा की साधना करके वसूल करना चाहिए ।

आहार पर संयम रखने से हम हिंसा के भयंकर पापों से बच सकते है । एक बार रसोई बनाने में असंख्य जीवों की विराधना होती है ।

पर्युषण जैसे पवित्र दिनों में आहार का त्याग करने से हमें असंख्य जीवों को अभयदान देने का पुण्य होता है ।

पापों के अतिक्रमण में, प्रतिक्रमण जरूरी है

जहाँ अतिक्रमण होता है, वहाँ प्रतिक्रमण जरूरी है । द्रुत गति से आगे दौडने वालों वाहन हो या मंद गति से चलने वाली बैलगाड़ी हो, इन सभी वाहनों में पीछे हटने की भी सुविधा होनी है । मनुष्य भी अपने पैरों के द्वारा आगे भी बढता है और जरूरत पड़ने पर पीछे भी हटता है ।

जीवन में लिये हुए व्रत–नियमों को सुरक्षित रखने के लिए एवं इन व्रत–नियमों में किसी प्रकार के अतिचारों का सेवन हुआ हो तो प्रतिदिन प्रतिक्रमण करना जरुरी है ।

आत्मा की सुरक्षा एवं भव के बंधनों को तोड़ने के लिए व्रत–नियमों के बंधन का स्वीकार जरूरी है । यदि जीवन में व्रत–नियमों के बंधन नहीं हैं, तो प्रतिदिन अनावश्यक पापकार्यों में हम जुड़ जाते हैं । इन अनावश्यक पापों से बचने के लिए व्रत–नियम का स्वीकार परम श्रेयकारी है ।

जब भी इन व्रत–नियमों में अतिक्रमण हो जाय, तब प्रतिक्रमण जरूरी है ।

श्रावक प्रतिदिन विशेष आराधना न कर सके तो हर तीसरे दिन आनेवाली पर्वतिथि रूप दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी एवं चतुर्दशी के दिनों में विशेष आराधना करें । इन पर्वतिथियों में हमारे पुनर्जन्म के आयुष्यबंध की संभावना रहती है । यदि पापों का प्रायश्चित्त किये बिना हमारे आगामी जन्म के आयुष्य का बंध हो तो प्रायः करके आत्मा की दुर्गति हो सकती है ।

दुर्गति से बचने एवं अपनी धर्म आराधना को सुरक्षित रखने के लिए ही परमात्मा ने हमें उन पापों की शुद्धिरूप प्रतिक्रमण की क्रिया बताई है ।

सर्वशास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है 'कल्पसूत्र'

जिस प्रकार देवों में इंद्र, तारों में चंद्र, न्याय-प्रवीणों में श्रीराम, रूपवानों में कामदेव, हाथियों में ऐरावण, साहसिकों में रावण, बुद्धिमानों में अभयकुमार, तीर्थों में शत्रुंजय, गुणों में विनय, धनुर्धर में अर्जुन, मंत्रों में नवकार, वृक्षों में आम्रवृक्ष सर्वोत्तम है, उसी प्रकार सर्वशास्त्रों में कल्पसूत्र सर्वोत्तम है ।

कल्पसूत्र साक्षात् कल्पवृक्ष तुल्य है । इसमें वीरप्रभु का चरित्र बीज है, पार्श्वनाथ प्रभु का चरित्र अकुंर है, नेमिनाथ भगवान का चरित्र स्कंध है, ऋषभदेव प्रभु का चरित्र डाली है, स्थविरावली-पुष्प है और सामाचारी का ज्ञान सुगंध तथा मोक्ष की प्राप्ति फल है ।

इस कल्पसूत्र को पढ़ने से, पढ़नेवाले को सहायता करने से, इसके सभी अक्षरों का श्रवण करने से, तथा विधिपूर्वक इसकी आराधना करने से आत्मा आठ भवों में मोक्ष प्राप्त करती है ।

कल्प का अर्थ है - साधुओं के आचार । मुख्यतया साधुओं के आचारों का निर्देश होने से यह ग्रंथ 'कल्पसूत्र' कहलाता है ।

श्री महावीर प्रभु के छट्ठे पट्टधर, श्रुतसागर के पारगामी, चौदह पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने चौदह पूर्वों में नौवें प्रत्याख्यान–प्रवाद नाम के पूर्व में से दशाश्रुत स्कंध नामक ग्रंथ का उद्धार करके उसके आठवें अध्ययन के रूप में कल्पसूत्र ग्रंथ बनाया है ।

श्री महावीर प्रभु, अपने प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी को कहते हैं कि जो मनुष्य एकाग्र चित्तवाला बनकर पूजा-प्रभावना में तत्पर होकर इक्कीस बार कल्पसूत्र का श्रवण करता है, वह इस भवसागर से पार हो जाता है ।

इस कल्पसूत्र की महिमा जानकर पूजा-प्रभावना आदि कार्य करने चाहिए । सर्वसामग्री के साथ कल्पसूत्र का श्रवण वांछित फलदायी है ।

147

कर्मों से युद्ध कर मोक्ष प्राप्त करते हैं- 'भगवान महावीर'

भगवान महावीर के जन्म पश्चात् 64 इन्द्र एवं करोड़ों देवता, मेरु पर्वत पर, जन्मे हुए भगवान का 1 करोड़ 60 लाख कलशों से जन्माभिषेक करते हैं । मध्यरात्रि से सूर्योदय तक, मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक करके, इन्द्र महाराजा, भगवान माता को सौंप देते हैं । सूर्योदय के बाद भगवान के पिता-सिद्धार्थ राजा 10 दिनों तक क्षत्रियकुंड नगर में महोत्सव करते हैं ।

बालवय में ही भगवान धैर्यवान थे, जिसकी प्रशंसा इन्द्र महाराजा भी करते थे । इन्द्र के द्वारा भगवान की प्रशंसा को सहन नहीं करने वाले देव ने भगवान की परीक्षा हेतु भयंकर साँप एवं राक्षस का रूप किया, परंतु वह भगवान को डरा नहीं सका । इस पराक्रम को देख वर्धमान को 'महावीर' नाम प्रदान किया ।

यद्यपि सांसारिक भोग-सुखों में रागभाव से रहित होने पर भी वीर प्रभु ने माता-पिता के आग्रह से 'यशोदा' के साथ पाणिग्रहण किया । माता-पिता का स्वर्गवास होने के बाद अपने बड़े भाई नंदिवर्धन राजा की आज्ञा लेकर 1 वर्ष तक वार्षिक दान दिया, वे प्रतिदिन 1 करोड़ 8 लाख स्वर्णमुद्राओं का दान देते थे । वार्षिक दान के बाद कर्म से युद्ध करने के लिए, ज्ञातखंड के उपवन में मगसर वदी दसम के दिन दीक्षा को स्वीकार कर पाँच मुष्टि से अपने बालों को खींचकर लोच किया ।

दीक्षा के प्रथमदिन से ही 12½ वर्ष की साधना में भगवान संपूर्ण मौन रहे । इन 12½ वर्षों में भगवान पर देव-मनुष्य और तिर्यंचो के द्वारा अनेकानेक उपसर्ग हुए परंतु समता भाव में लीन परमात्मा ने उन उपसर्ग-कष्टों को समतापूर्वक सहन किया । कष्टों को सहन कर भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया ।

इन्द्र महाराजा विरचित समवसरण की में धर्मदेशना देकर, धर्मसंघ की स्थापना की । तीस वर्ष तक धर्म का दान कर शाश्वत सुख रूप मोक्ष पद प्राप्त किया ।

संवत्सरी पर्व दो टूटे हृदयों को जोड़ता है

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संदेश है - वैर का विसर्जन और सभी जीवों से मैत्री का संबंध ।

तीर की तरह शब्दबाण भी एक बार छूट जाने के बाद उसे वापस पकड़ा नहीं जा सकता है ।

जैसे कंकड़ के प्रहार से कांच के टुकड़े हो जाते हैं, वैसे ही कटु शब्दों के प्रहार से हृदय के टुकड़े हो जाते हैं । हृदय के टूट जाने के बाद उसे जोड़ना अत्यंत कठिन कार्य है ।

इसे जोड़ने का एक ही साधन है– सच्ची क्षमापना ।

वैर भाव का विसर्जन और मैत्री भाव का सर्जन कर जब सच्ची क्षमापना की जाती है, तब वह क्षमापना दो टूटे हृदयों को जोड़ देती है ।

दो टूटे हृदयों को जोड़ने का पावन पर्व सांवत्सरिक महापर्व है ।

मकान के बीच में दीवार खड़ी करने के साथ मकान के दो विभाग हो जाते हैं । मकान की दीवार दो भाइयों के बीच बँटवारा करती है, परंतु दिल की दीवार, दो हृदयों को विभक्त कर देती है । इस पर्वाधिराज पर्युषण की आराधना से दिल की दीवारों को तोड दें और मैत्री के झरने से दिल की दीवार साफ कर दें ।

उबलते हुए पानी में अपना प्रतिबिंब नहीं दिखाई देता है, उसी प्रकार क्रोध की क्षणों में व्यक्ति को अपनी आत्मा के हित-का विचार नहीं होता है । अतः आत्महित के लिए हमेशा क्रोध के निमित्त से बचना चाहिए । यदि क्रोध आ जाए तो क्षमा के जल से उसे शांत कर देना चाहिए ।

149

वैर का विसर्जन करो

मानवीय मन अति चंचल है । अनुकूलता–प्रतिकूलता, संयोग-वियोग, सुख-दुःख आदि विभिन्न परिस्थितियों में मन तरंगित हुए बिना नहीं रहता है । बाह्य संयोग एवं परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही मन के विचार बदलते रहते हैं । आज हमारा मन जिस व्यक्ति को मित्र मान रहा है, कल उसी व्यक्ति के प्रति घृणा भी कर सकता है । तो आज जिस व्यक्ति के प्रति घृणा कर रहा है, कल उसी व्यक्ति के साथ दोस्ती भी कर सकता है ।

अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रही अपनी आत्मा ने अनंत जीवों के साथ विविध प्रकार के संबंध जोड़े हैं । उन सभी संबंधों में अनेकबार द्वेष, घृणा वा तिरस्कार का विष भी घुला है । इस कारण अनेक जीवों से दुश्मनी की है । आत्मा में सत्तागत रही उन वैर वृत्तियों को निर्मूल करने के लिए जगत् के समस्त जीवों के साथ वैर का विसर्जन और मैत्री के संबंध की पुनः स्थापना करनी होगी ।

धर्म का मूल सभी जीवों के साथ मैत्री है । मूल के अभाव में वृक्ष का अस्तित्व संभव नहीं है, वैसे ही मैत्री के अभाव में धर्म का अस्तित्व संभव नहीं है । मैत्री की नींव पर ही जीवन में सद्धर्म की स्थापना हो सकती है ।

जब तक मन में वैर की गांठे रहेगी तब तक सच्ची आराधना संभव नहीं हैं अतः हृदय में वैर की गांठ पैदा न हो, इसका पूरा पूरा ख्याल रखना चाहिए ।

केन्सर से भी वैर की गाँठ ज्यादा भयंकर है

शरीर में रही केन्सर की एक छोटी-सी गाँठ अंत में मौत का कारण बनती है, उसी प्रकार हृदय में रही छोटी सी वैर की गाँठ जीवात्मा को अनेक भवों तक संसार में भटकाती है । केंसर से भी वैर की गाँठ ज्यादा भयंकर है ।

क्रोधादि चार कषायों को जीतने के लिए मैत्री आदि चार भावनाओं से मन को भावित करना ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है ।

क्रोध हमारे मन में रही प्रीति का नाश करता है । उस प्रीति को पुनः स्थापित करने के लिए सभी जीवों को आत्मतुल्य मानना होगा । हम अन्य की भूल को माफ नहीं करते हैं और अपनी भूल देखते नहीं है । यदि हृदय में मैत्री का भाव होगा तो क्रोध पैदा ही नहीं होगा । कदाचित् पैदा हो गया तो मैत्री का भाव उसका नाश कर देगा ।

मान कषाय नष्ट करने के लिए गुणवान जीवों पर प्रमोद भाव पैदा करना होगा । हमें अपना सुकृत बड़ा लगता है, तब अभिमान आता है, परंतु जब मन में प्रमोद भाव होगा तो अपना किया हुआ सुकृत हमें छोटा लगेगा । जिससे मान का नाश होगा ।

माया कषाय का नाश करने के लिए हृदय में सभी दुःखी जीवों पर करुणा का भाव स्थापित करना होगा । जिसके मन में करुणा का स्त्रोत बहता होगा वह किसी को मायाजाल में कैसे फँसा सकता है ? अतः करुणा भाव से माया का नाश हो जाता है ।

लोभ कषाय का नाश करने के लिए पापी जीवों पर माध्यस्थ्य भाव धारण करना होगा । लोभ के पाप से जिसका अन्तर्मन पापमय बना है, उसे सुधारने में हमारा प्रयत्न कभी सफल नहीं होगा अतः उनके प्रति रहा उपेक्षा भाव हमारे लोभ को शांत करेगा ।

विशिष्ट तप के बाद अभक्ष्य भोजन का त्याग करना चाहिए

आहार ग्रहण करना आत्मा का वास्तविक स्वभाव नहीं है । आत्मा का वास्तविक स्वभाव तो अणाहारी है । इसलिए जब हम परमात्मा की नैवेद्य पूजा करते हैं तब परमात्मा से अणाहारी पद की विनती करते हैं ।

आत्मा जब तक संसार में कर्मों के बंधनों से बँधी हुई है, तब तक आत्मा को चार गति रूप संसार में शरीर धारण करना पड़ता है और शरीर को टिकाने के लिए आहार ग्रहण करना पड़ता है ।

आहार की इस गुलामी से मुक्त होने के लिए परमात्मा के आगे नैवेद्य अर्पण करना है और मन में यह भाव करना है कि अनादि काल से इस आहार संज्ञा के कारण आज तक मैंने खूब आहार ग्रहण किया है, फिर भी आत्मा को तृप्ति नहीं हुई है । हे परमात्मा ! आप मुझे इस आहार की हैरानी से मुक्त करो ।'

आत्मा को सबसे बड़ा बंधन आहार का है । संयमजीवन के स्वीकार के बाद पाँच इन्द्रियों में से चार इन्द्रियों के विषयों पर स्वतः संयम आ जाता है । अच्छा स्पर्श, अच्छा रूप दर्शन, संगीत और सुगंध ग्रहण करने का त्याग हो जाता है, परंतु स्वादिष्ट भोजन के लिए तो विशेष रूप से पुरुषार्थ करना पड़ता है ।

श्रावकजीवन में नैमित्तिक तप खूब बढ़ा है परंतु नित्य तप का अभाव देखने को मिलता है । कई लोग पर्व के दिनों में बड़े– बड़े तप कर लेते हैं, परंतु तप पूर्ण होने के बाद अभक्ष्यभोजन एवं रात्रिभोजन का भी त्याग नहीं करते हैं । वैसे ही तप करने के बाद अभक्ष्य–भक्षण एवं रात्रि–भोजन का त्याग करना चाहिए ।

क्षमा करो और भूल जाओ

किसी के अपराध को वचन से क्षमा कर देना आसान है किंतु उसे मन से भूल जाना कठिन है ।

वचन से क्षमा कर देने के बाद भी मन के किसी कोने में अपराधी के अपराध की स्मृति रह जाती है, परिणामस्वरूप क्षमा कर देने के बाद भी हमें वह व्यक्ति अपराधी नजर आता है । सचमुच, क्षमा कर देने के बाद अपराधी की भूल को भूल जाना चाहिए । क्षमा करने के बाद हृदय में किसी प्रकार की कटुता नहीं रहनी चाहिए । यदि बाद में भी हृदय में कटुता रहती है तो समझना चाहिए कि हमने वास्तव में क्षमा दान नहीं किया है ।

वैर से वैर कभी शांत नहीं होता है । वैर का शमन तो निर्वैर अर्थात् मैत्री से ही संभव है । आग में ईंधन डालने से आग कभी शांत नहीं होती है । बल्कि वह अधिक–अधिक प्रज्वलित होती जाती है, आग की शांति के लिए तो जल का ही आश्रय लेना पड़ता है ।

बस, इसी प्रकार वैर की आग को शांत करना चाहते हो तो मैत्री का आश्रय लेना चाहिए । सचमुच, इस जगत् में अपना बुरा करनेवाला कोई नहीं है । अपनी ही मलिन वृत्ति–प्रवृत्तियों के कारण अपना बुरा होता है, अतः यदि अपना भला चाहते हो तो अपने मन को मैत्री–प्रमोद–करुणा एवं माध्यस्थ्य भावना से ओतप्रोत करने का प्रयास करो ।

हम दूसरों का भला चाहकर, भला कर अपना ही भला करते है और दूसरों का बूरा कर हम अपना ही बूरा करते है । अतः आत्म-हित चाहते हो तो सदैव मैत्री भाव से आत्मा को भावित करना चाहिए ।

153 सांसारिक दोषों के नाशक हैं पंच परमेष्ठी

नवकार महामंत्र की आराधना में मन को स्थिर बनाने के लिए सबसे पहले जगत् के सभी जीवों से क्षमायाचना का भाव रखना चाहिए । उसके बाद जगत् में रहे सभी जीवों के सुख की भावना से अपना अन्तर्मन भावित करना चाहिए ।

''मुझे सुख मिले और मेरा दुःख दूर हो'' इस प्रकार की इच्छा में स्वार्थ भाव रहा हुआ है, जिससे अशुभ कर्मों का बंध होता है । इससे श्रेष्ठ भावना ''सभी जीवों को सुख मिले और सभी का दुःख दूर हो'' व ''जीवमात्र का कल्याण हो,'' इस भावना से आत्मा धर्मध्यान को प्राप्त कर अपने स्वार्थ का नाश करती है ।

नवकार से संसार का नाश होता है, क्योंकि नवकार में रहे पंच परमेष्ठी आत्मा के दोषों के नाशक हैं ।

परोपकारमय अरिहंत स्वार्थमय संसार का नाश करते हैं । शाश्वत सुखमय सिद्ध दुःखमय संसार का नाश करते हैं । सदाचारमय आचार्य पापमय संसार का नाश करते हैं ।

ज्ञानवंत उपाध्याय अज्ञानमय संसार का नाश करते हैं और वैराग्यमय साधु भगवान विषयकषायमय संसार का नाश करते हैं ।

दुःख से भी दोष ज्यादा खतरनाक है । दोषों के कारण ही संसारी जीव दुःखी होता है । दोषों का नाश होने पर दुःख का नाश स्वतः हो जाता है ।

कमल की कल्पना कर नवकार जाप करें

मंदिर में प्रभुजी की प्रतिष्ठा करनी हो, तो सर्वप्रथम उस भूमि का शुद्धिकरण किया जाता है। खनन विधि एवं शिलान्यास के द्वारा उस भूमि को शुद्ध किया जाता है। बस, इसी प्रकार हमारे मन में शाश्वत महामंत्र रूप नवकार की स्थापना करने के लिए, मन को मंदिर बनाने के लिए मन में रहे अशुभ भावों के कचरे को अवश्य दूर करना चाहिए।

मन में रहे अशुभ भावों की शुद्धि के बाद मन में आठ पंखुड़ीवाले कमल की स्थापना करनी चाहिए, उसके मध्य में रही कर्णिका में प्रथम पद–नमो अरिहंताणं की स्थापना करनी चाहिए। फिर पूर्व आदि चार दिशाओं में नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं और नमो लोए सव्व साहूणं पद की स्थापना करनी चाहिए। इसके बाद आग्नेय विदिशा की पंखुड़ी में एसो पंच नमुक्कारो, नैऋत्य विदिशा की पंखुड़ी में सव्व पाव प्पणासणो, वायव्य विदिशा में मंगलाणं च सव्वेसिं तथा ईशान विदिशा में पढमं हवइ मंगलं पद की स्थापना करनी चाहिए।

मन-वचन और काया की एकाग्रता पूर्वक जाप करने से आराधना विशेष फलदायी बनती है।

प्रातः काल की मंगल वेला में चित्त की प्रसन्नता व एकाग्रता पूर्वक 108 बार नवकार का जाप करने से एक उपवास का लाभ मिलता है।

जाप में मन की एकाग्रता खूब जरुरी है। एकाग्रता रहित जाप विशेष फलदायी नहीं होता है।

155

दोषनाश और गुणप्राप्ति का उपाय है नवकार

मन में नमस्कार महामंत्र की प्रतिष्ठा करने के लिए, अशुभ भावनाओं के कचरे को दूर करना जरूरी है ।

किसी भी जीव के साथ, जब तक हृदय में वैर की गाँठ होगी, तब तक नमस्कार महामंत्र के वास्तविक स्वरूप को पहचानना शक्य नहीं है । अतः अपने जीवन में किसी भी व्यक्ति के प्रति वैर-विरोध हो तो उसके साथ क्षमा-याचना करना अनिवार्य है ।

जगत् में रहे सभी जीवों के साथ क्षमापना करने से मन प्रफुल्ल हो जाता है । जिस व्यक्ति ने जीवमात्र के साथ क्षमायाचना कर ली है, इस जगत् में उस व्यक्ति का अपना कोई दुश्मन नहीं होता है । वही व्यक्ति जीवमात्र के साथ मैत्री का मधुर संबंध स्थापित कर सकता है ।

दुनियाँ भर में जितने भी दोष रहे हुए हैं, वे सभी मोहनीय कर्म के कारण हैं । नवकार महामंत्र से मोहनीय कर्म का नाश होता है, जिससे अन्य सभी कर्मों का भी नाश हो जाता है । कर्मों के नाश से दोषों का नाश होता है और दोषों का नाश होने पर गुणों का प्रकर्ष हुए बिना नहीं रहता है । अतः दोषनिवारण और गुणप्राप्ति का एक सरल उपाय है नवकार महामंत्र की आराधना ।

गुण संपन्न को नमस्कार करने से गुणों की प्राप्ति और दोष रहित को नमस्कार करने से अपने जीवन में रहे दोषों का भी क्षय होता है ।

नवकार में पाप नाश की अपूर्व शक्ति है

नवकार मंत्र में रहे पंच परमेष्ठी–भगवंतों को भावपूर्वक नमस्कार करने से पुण्य का पुंज इकट्ठा होता है । उस पुण्य के पुंज में अनंत भवों के पाप–नाश करने की अपूर्व शक्ति रही है । लाखों मण लकड़ियों के ढ़ेर को अग्नि की एक चिनगारी नष्ट करने में समर्थ है । उसी प्रकार पाप के ढेर को नष्ट करने की शक्ति पुण्य की एक चिनगारी में है ।

रात्रि में गाढ़ अंधकार होता है, उस रात्रि के अंधकार को उगते हुए सूर्य की एक किरण नष्ट कर देती है । उसी प्रकार नवकार महामंत्र के स्मरण से आत्मा में रहे अज्ञान रूपी अंधकार का नाश और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है ।

नवकार महामंत्र में रहे पंच परमेष्ठी भगवंत मोह के विजेता हैं अतः उनको नमस्कार करने से अपनी अन्तरात्मा में रहा मोह विलीन होता है और हमें हमारी आत्मा के वास्तविक स्वभाव की प्राप्ति होती है ।

जहाँ पंच परमेष्ठी को नमस्कार है, वहाँ चमत्कार है । दुनिया कहती है, जहाँ चमत्कार, वहाँ नमस्कार । परंतु नवकार के प्रभाव से आत्मा के पापनाश का अपूर्व चमत्कार अवश्य होता है । जिस नवकार से संपूर्ण पाप नष्ट हो जाता है, उसके जाप से शरीर के केंसर आदि रोग दूर हो, इसमें कोई बड़ा आश्चर्य नहीं है ।

परम पददायी नमस्कार महामंत्र के प्रभाव से इस लोक संबंधी या परलोक संबंधी सुख सामग्री प्राप्त हो, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।

157 नमस्कार से होता है सर्वाधिक पुण्य

'ठाणांग सूत्र' में भगवान महावीर ने पुण्यबंध के 9 हेतु बतलाए हैं । इन नौ कारणों में, भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी पिलाना, वस्त्ररहित को वस्त्र देना, जिसके पास रहने के लिए कोई स्थान नहीं है, उसे स्थान देना और जिसके पास शयन की कोई सामग्री नहीं है, उसे शयन के लिए सामग्री देना । पुण्यबंध के ये पाँच कारण दान से संबंधित हैं । धर्म की शुरुआत दान से होती है अतः दान को धर्म का प्रथम अंग कहा है ।

तत्पश्चात् मन से शुभ विचार करना मनपुण्य, वचन से मधुर वचन कहकर अन्य को सान्त्वना देना वचनपुण्य तथा काया से अन्य को सहाय करना काय–पुण्य है ।

इन सभी पुण्य कार्यों से भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नौवा नमस्कार पुण्य है । एक मनुष्य जब दूसरे गुणवान को आदरपूर्वक नमस्कार करता है, तब वह स्वयं में रहे अप्रकट गुणों को प्रगट करने के लिए, नमस्कार कर रहा होता है ।

पंच परमेष्ठि–भगवंतों में जो गुण प्रकट हैं, वे ही गुण हममें अप्रकट रूप में हैं । पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने से हममें वे गुण प्रकट होते हैं । नमस्कार के योग्य को किया गया नमस्कार मोक्ष का बीज है ।

अतः प्रति दिन नमस्कार महामंत्र का स्मरण, जाप एवं ध्यान करना चाहिये । गुणवान को नमस्कार गुण-प्राप्ति का अमोध उपाय है ।

'नवकार से संसार का अंत है'

इस संसार के पांच स्वरूप है । 1) स्वार्थमय संसार 2) दुःखमय संसार, 3) पापमय संसार, 4) अज्ञानमय संसार, 5) विषय–कषायमय संसार ।

इन पांच प्रकार के संसार में जीवात्मा अनादि काल से दुःख का अनुभव करती है । इनसे मुक्त होने का एक मात्र उपाय पंच परमेष्ठी की आराधना है । पंच परमेष्ठी इन सभी दोषों से विपरीत गुणवाले हैं ।

अरिहंत भगवान परमार्थमय है, जो हमारे स्वार्थ का नाश करते हैं ।

सिद्ध भगवान शाश्वत सुखमय हैं, जो हमारे दुःखों का नाश करते हैं ।

आचार्य भगवंत सदाचारमय हैं, जो हमारे पापों का नाश करते हैं ।

उपाध्याय भगवंत विनयमूलक ज्ञानमय हैं, जो हमारे अज्ञान का नाश करते हैं और

साधु भगवंत वैराग्यमय हैं, जो हमारे विषय–कषायों का नाश करते हैं ।

दोषों का नाश और गुणों की प्राप्ति हेतु सर्वश्रेष्ठ उपाय नवकार महामंत्र है ।

इस प्रकार दोषों का नाश करनेवाले और गुणों को प्राप्त करानेवाले नमस्कार महामंत्र का प्रतिदिन स्मरण जाप और ध्यान करना चाहिए ।

159 मोक्ष में जाने के लिए नवपद नाव समान है

आत्मा को संसार–सागर से जो पार उतारे वह तीर्थ और आत्मा को पावन करे वह पर्व कहलाता हैं ।

तीर्थयात्रा करने के लिए हमें घर छोड़कर जाना पड़ता है, जबकि पर्व स्वयं हमारे घर पर दस्तक देते आते हैं । आत्मा को भवसागर से पार उतारने के लिए अनेक पर्व अपने–अपने उचित समय पर आते रहते हैं, यदि हम पर्वों के नीति–नियमों को जीवन में साध लें, तो आया हुआ पर्व हमारे लिए सफल है ।

नाव हमें नदी से पार उतारती है, परंतु हमारा कर्तव्य है कि हम उसमें आकर बैठे । मात्र नदी तट पर ही खड़े रहें तो नाव हमें पार नहीं करा सकती, उसी प्रकार नवपद की आराधना से भूतकाल में अनंत आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है, परंतु आज तक हमारी आत्मा को मोक्ष नहीं हुआ, उसका मुख्य कारण, हमने नवपद की शरण स्वीकार नहीं की है ।

भूतकाल में आज तक जितनी आत्माएँ मोक्ष में गई हैं, वर्तमान में जा रही हैं, और भविष्य में जो जाएगी, निःसन्देह यह सब नवपद की आराधना–साधना और ध्यान का ही प्रभाव है ।

संपूर्ण जगत में नवपद से बढकर कोई श्रेष्ठ पद नहीं है । उनमें प्रथम दो पद सर्व गुण संपन्न और सर्व दोषों से मुक्त है और उसके बाद के तीन पद गुणों की प्राप्ति और दोषों से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील है । उनकी आराधना हमें भी गुणों की प्राप्ति कराती है और दोषों से मुक्त करती है ।

नवकार महामंत्र कृतज्ञता का मंत्र है

जीवन में अध्यात्म के विकास के लिए 'कृतज्ञता' का गुण अत्यंत जरूरी है । अपने ऊपर हुए उपकारी के उपकार को भूल जाना कृतघ्नता है और हम पर हुए उपकारी के उपकार को सदैव याद रखना, उनका स्मरण करना यह कृतज्ञता का गुण है ।

कृतज्ञता गुण धर्म का मूल है । इस जगत् में सर्वाधिक कृतज्ञ, यदि कोई है तो वे तीर्थंकर परमात्मा है ।

प्रभु का नाम–स्मरण करने मात्र से वे अनंत भवभ्रमण के दुःख मिटाते हैं । भगवान की थोड़ी भी भक्ति हमारी दुःख की परंपरा को तोड़कर मुक्ति सुख देनेवाली है ।

नवकार महामंत्र कृतज्ञता का मंत्र है । जीवात्मा को परमात्मा की ओर ले जाने के लिए 'नमो' पद सेतु का कार्य करता है । एक मनुष्य जब दूसरे मनुष्य को आदरपूर्वक नमस्कार करता है, तब वह स्वयं में रहे अप्रकट गुणों को प्रकट करने के लिए, प्रकट गुणवाले दूसरे को नमस्कार कर रहा होता है ।

बाहर से मस्तक झुकता है, किंतु अंतर से तो जिसको नमस्कार करता है, उसमें प्रकट रूप में रहे गुणों को प्राप्त करने का उत्साह बतलाता है । परमेष्ठि-भगवंतों में जो गुण प्रकट हैं, वे ही गुण हम में अप्रकट रूप में रहे हुए हैं । परमेष्ठी को वंदन, नमन, स्मरण, चिंतन और ध्यान करने से वे गुण क्रमशः नमस्कार करनेवाले में प्रकट होते हैं ।

नमस्कार के योग्य को किया गया नमस्कार, मोक्ष का बीज है ।

सबसे बडे उपकारी अरिहंत परमात्मा हैं

शाश्वत सुखी बनने का मार्ग बताने से अरिहंत परमात्मा सबसे बड़े उपकारी हैं ।

क्षणिक उपकार तो हर कोई व्यक्ति करता हैं । भूखे को भोजन देना भी एक उपकार है, परंतु वह उपकार मात्र एक दिन के लिए है । दूसरे दिन भूख की समस्या वापस पैदा हो जाती है ।

प्यासे की प्यास मिटाने से दो–चार घंटों तक राहत होती है, परंतु बाद में प्यास की समस्या वैसी ही रहती है ।

वैद्य भी बीमार का इलाज करके उपकार करता है, परंतु रोगों के घर रूप शरीर में वापस रोग पैदा होता है, अतः वैद्य भी क्षणिक उपकारी है, शाश्वत नहीं ।

बेघर व्यक्ति को घर देने पर उपकार होता है, परंतु वह व्यक्ति उस घर में मात्र एक जीवन तक रह सकता है, मृत्यु होने पर उसी घर से उसे बाँधकर निकाल दिया जाता है ।

दुनिया के ये सारे उपकार, समय बीतने पर पूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि कर्मों से बँधी हुई आत्मा इस संसार में एक स्थान पर ज्यादा से ज्यादा एक जन्म तक रह सकती है । मौत के बाद पुनः आत्मा को चौरासी लाख जीवयोनियों में भ्रमण करना ही पड़ता है ।

इस भव–भ्रमण के बंधन को तोड़ने के लिए अरिहंत परमात्मा ने कर्मों से मुक्ति का मार्ग बताया है । इनके मार्ग पर चलने से आत्मा सारी समस्याओं के नाश रूप मोक्षपद प्राप्त कर सकती है ।

जहाँ समस्याओं का पार नहीं है और समाधान का अंश नहीं, ऐसे संसार से मुक्त होकर जहाँ समस्याओं का अंश नहीं ऐसा मोक्ष पाने के लिए परमात्मा ने नवपद की आराधना बताई है ।

अरिहंतों का असीम उपकार है

प्रत्येक जैन को सुबह उठते ही प्रतिदिन नवकार जाप द्वारा देव और गुरु को नमस्कार करना चाहिए ।

'नमो अरिहंताणं' पद द्वारा अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार करते हैं । इसका कारण उनका अपने ऊपर महान् और असीम उपकार है, क्योंकि वे मोक्षमार्ग के आद्य प्रकाशक हैं । अज्ञानता के कारण मार्गभ्रष्ट बनी आत्माओं को मुक्ति का मार्ग अरिहंत ही बताते हैं ।

संसारी जीवों को मोहाधीन जानकर उनके कल्याण के लिए वे अपने पूर्व के तीसरे भव में 'सवि जीव करूँ शासन–रसी' की तीव्र शुभ भावना के बल से 'तीर्थङ्कर नामकर्म' निकाचित करते हैं और अन्तिम भव में दीक्षा अंगीकार कर आत्म–साधना के बल से 'केवलज्ञान' प्राप्त करते हैं । उसके बाद तीर्थङ्कर नामकर्म के उदय के साथ धर्म-तीर्थ की स्थापना करते हैं और दीर्घकाल से अवरुद्ध मोक्षमार्ग को पुनः प्रकाशित करते हैं ।

केवलज्ञान के बाद त्रिपदी के दान द्वारा तीर्थङ्कर परमात्मा गणधरों की स्थापना करते हैं और वे गणधर भगवन्त त्रिपदी में से द्वादशांगी की रचना करते हैं ।

तीर्थ–स्थापना के बाद प्रतिदिन अरिहंत परमात्मा भव्य जीवों के कल्याण के लिए दो प्रहर तक धर्मदेशना देते हैं । जिस देशना के अमीपान से अनेक भव्यात्माएँ मुक्तिपद प्राप्त करती हैं । वर्तमान में हम जो कुछ भी मोक्षमार्ग की आराधना अथवा आत्मसाधना कर पाते हैं–उसमें भी चरम तीर्थंकर भगवान महावीर का ही उपकार है ।

163

परमात्मा चार निक्षेपों से जीवों पर उपकार करते हैं

अनंत उपकारी तारक तीर्थंकर परमात्मा जगत् के समस्त प्राणियों पर नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप चारों निक्षेपों के द्वारा महान् उपकार करते हैं । अरिहंत परमात्मा के उपकारों का वर्णन शब्दातीत है । ऐसे तारक परमात्मा की भक्ति करना श्रावकजीवन का आवश्यक कर्तव्य है ।

हर व्यक्ति पर शुभ-अशुभ निमित्तों का असर अवश्य होता है । शुभ निमित्त को पाकर अपना मन शुभ भाव से ओतप्रोत बनता है और अशुभ निमित्त को पाकर अपना मन अशुभ भाव से प्रभावित होता है ।

चंचल चित्त को वशीभूत करने के लिए, उच्छृंखल इन्द्रियों को शांत करने के लिए और विषयों से विरक्ति पाने के लिए देवाधिदेव परमात्मा की प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ आलंबन है ।

जिन–प्रतिमा के दर्शन से आत्मप्रदेशों में रूढ़ बने अशुभ-भाव विलीन हो जाते हैं । परमात्मा को भावपूर्वक वंदन करने से हृदयगत शोक और संताप दूर हो जाते हैं ।

वीतराग परमात्मा के दर्शन से भव्यात्मा का मन प्रशस्त शुभ भावों से ओतप्रोत बन जाता है ।

परमात्मा को वंदन करने से हमारे अशुभ कर्मों का नाश और उत्कृष्ट पुण्य का बंध होता है । धर्म–आराधना में आने वाले विघ्नों का नाश और चित्त में प्रसन्नता का भाव पैदा होता है ।

प्रभु की भक्ति में उत्तम द्रव्यों का उपयोग करने से आत्मा में रही धन के प्रति आसक्ति का नाश होता है ।

164 परमात्म भक्ति हमें अक्षय बनाती है

जल की एक बूंद की कोई कीमत नहीं होती, पवन के एक झोंके मात्र से वह नष्ट हो जाती है, परंतु वही जलबुंद जब सागर को अपना जीवन समर्पित कर देती है, तब वह अक्षय बन जाती है । इसी प्रकार जो आत्मा प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाती है, परमात्मा उसे पूर्ण और अक्षय बना देते हैं ।

भवसागर को जिन्होंने पार कर दिया है और जो सभी प्रकार के आत्मिक गुणों से युक्त हैं, ऐसे जिनेश्वर परमात्मा, हमारे लिए सदैव स्तवनीय और पूजनीय हैं ।

तारक अरिहंत परमात्मा का हमारी आत्मा पर अनंत उपकार है । उनकी चाहे जितनी भक्ति करें तो भी उनके उपकार के ऋण से मुक्त नहीं बन सकते हैं । ऐसे परमात्मा के गुणों की स्तवना करने से हमारी आत्मा में रहा मोह का अंधकार दूर होता है और आत्मा में रहे गुणों का प्रादुर्भाव होता है ।

जन्म–जन्मांतर में अज्ञानता और मोह के कारण आत्मा ने अनेक पापकर्मों का उपार्जन किया है, उन समस्त पापों को जड़मूल से नष्ट करने की ताकत परमात्म–स्तवना में रही हुई है । भावपूर्वक परमात्मा की स्तवना करने से आत्मा पर लगे हुए अनेक भवों के पापकर्म नष्ट हो जाते हैं । प्रभु के नाम-स्मरण में कर्मक्षय की अपूर्व शक्ति रही हुई है ।

जिस प्रकार छुरी के एक प्रहार से कमल की सैकड़ों पंखुड़ियों को एक साथ बींधा जा सकता है, उसी प्रकार प्रभु की स्तुति में आत्मा पर लगे अनंत कर्मों को एक साथ नष्ट करने की ताकत है ।

165

परमात्मा के स्वभाव का आकर्षण होना चाहिए

इस अवसर्पिणी काल में हुए चौबीस तीर्थंकरों में श्री पार्श्वनाथ भगवान की महिमा सर्वाधिक गायी जाती है ।

उनके शासन की कालावधि (मात्र 290 वर्ष) सबसे कम होने पर भी आज पूरे भारत भर में सबसे अधिक जैन मंदिरों के मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान हैं ।

हजारों की संख्या में रहे उनके जिनालयों में उनका विशेष प्रभाव है । महाराष्ट्र में अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, आकाश में अधर हैं, तो कृष्ण महाराजा के द्वारा शंख बजाने से स्थपित शंखेश्वर पार्श्वनाथ पूरे विश्व में प्रभावशाली है । अनेक चमत्कारिक घटनाओं एवं करोड़ों देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजित इस तीर्थ की महिमा सबसे न्यारी है ।

आज कई लोगों के पास भौतिक समृद्धि है, किन्तु आत्मशांति नहीं है । श्री पार्श्वनाथ भगवान की आराधना हमें जीवन में शांति, मरण में समाधि, परलोक में सद्गति एवं परंपरा से मुक्ति प्रदान करने की गारंटी देती है ।

पारसमणि और पारसप्रभु में बडा अंतर है । पारसमणि लोहे को सोना ही बनाता है, पारसमणि नहीं बनाता, जबकि पार्श्वप्रभु तो उनकी भक्ति करने वाले को आत्मतुल्य बना देते हैं ।

मात्र चमत्कारों से परमात्मा का आकर्षण खूब सरल है, हमें मात्र परमात्मा के चमत्कारों का नहीं, परंतु परमात्मा के स्वभाव का आकर्षण होना चाहिए ।

166

प्रभुदर्शन का तत्काल फल चित्त की प्रसन्नता है

अनादि काल से आत्मा में धन के प्रति मूर्च्छा रही है, उस मूर्च्छा को दूर करने का सर्व श्रेष्ठ उपाय परमात्मा की भक्ति है। परमात्मा की भक्ति में उत्तम द्रव्यों का उपयोग करने से धन की आसक्ति दूर होती है ।

निष्काम भाव से परमात्मा की भक्ति करने से पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध और भूतकाल में बँधे हुए अशुभ कर्मो का क्षय होता है। उस पुण्य के उदय से मोक्षमार्ग में अनुकूल सामग्रियों की प्राप्ति होती है ।

परमात्मा की पूजा का वास्तविक फल मोक्ष है, परंतु तत्काल फल तो चित्त की प्रसन्नता है। भक्ति के भावों की उर्मियों से हमारे जीवन की सारी चिन्ताएँ नष्ट होती हैं, और चित्त प्रसन्नता से भर जाता है ।

जिस प्रकार वसंत ऋतु के आगमन से सारी वनराजी खिल उठती है, उसी प्रकार परमात्मा के दर्शन से भक्तहृदय प्रसन्न हुए बिना नहीं रहता है ।

प्रभु का दर्शन व पूजन भावमंगल स्वरूप है, जो हमारे साधना– मार्ग में आने वाले सभी विघ्नों का नाश करता है और मोक्षमार्ग में निर्विघ्नतया गति कर सकते है ।

धर्मसाधना में भावमंगल के साथ द्रव्य मंगल भी जरूरी है। मंगल के लिए अट्ठम एवं आयंबिल का तप सर्वश्रेष्ठ बताया है।

आनंदघनजी ने गाया हैं–'चित्त प्रसन्न रे पूजन फल कह्युं रे' प्रभु के पूजन का तत्काल फल चित्त-प्रसन्नता है।

हे प्रभो ! मुझे दोष-मुक्त करो

मुझे दुःखमुक्ति नहीं, दोषमुक्ति चाहिए । सारी दुनिया दुःख को खराब कहती है और दुःख से डरती है, दूर भागती है । जीवन में दुःख न आए, इसके लिए प्रयत्नशील बनती है ।

हे प्रभो ! आप और आपका शासन दुःख को नहीं, दोष (पाप) को भयंकर कहता है ।

जब तक जीवन में पापप्रवृत्ति चालू होगी, तब तक भविष्य में दुःख आने वाला है । पापप्रवृत्ति बंद होगी तो उसके विपाक रूप दुःख स्वतः बंद हो जाएगा ।

'मूलं नास्ति कुतः शाखा ?' मूल ही नहीं होगा तो शाखा कहाँ से पैदा होगी ? दुःख तो पूर्वभव में किए गए पाप का विपाक (फल) है । पहले पाप का आचरण किया है तो अब दुःख आने ही वाला है ।

हे प्रभो ! मुझे वह शक्ति दो कि मैं मन से भी पाप न करूँ ।

दुःख किसी को नहीं चाहिए, परन्तु जीवन में दोष का सेवन तो चालू ही है ।

रोग की पीड़ा नहीं चाहिए परंतु रोग को बढ़ावा मिले, ऐसी अपथ्यसेवन की प्रवृत्ति तो चालू ही है ।

हे प्रभो ! मुझे दुःख जितना भयंकर लगता है, उतना दोष भयंकर नहीं लगता है । जब तक जीवन में दोषों का सेवन होगा तो दुःख आने ही वाला है ।

जब आत्मा में दोष का अस्तित्व नहीं रहेगा तब आत्मा दुःखमुक्त बने बिना नहीं रहेगी । दुःख मुक्ति के लिए दोष–मुक्ति अनिवार्य है ।

हृदय-मंदिर में प्रभु-प्रतिष्ठा ही सफल है

वे आत्माएँ धन्य हैं, जिनके हृदय में परमात्मा का स्थान है, परंतु वे आत्माएँ धन्यातिधन्य हैं, जो खुद परमात्मा के हृदय में स्थान पाये हुए हैं ।

परमात्मा के हृदय में स्थान पाना अति–कठिन है परंतु अपने हृदय में परमात्मा को विराजमान करना, यह हमारे हाथ में है ।

परमात्मा मंदिर में विराजमान होते हैं, तो यदि हमें हमारे हृदय में परमात्मा को विराजमान करना हो तो हृदय को मंदिर की तरह पवित्र बनाना पड़ेगा ।

जिनमंदिर या गृहमंदिर में परमात्मा की प्रतिष्ठा तभी सफल है जब हमारे हृदय मंदिर में परमात्मा की प्रतिष्ठा हो ।

मंदिर निर्माण के पहले खनन विधि करके अशुद्ध तत्त्वों को बाहर निकालते हैं, तो मन मंदिर में भी सबसे पहले खनन–विधि कर दोषों को बाहर निकालना होगा । तत्पश्चात् शिला स्थापना के रूप हमें परमात्मा के मार्ग और परमात्मा के सभी संबधी जीवों के साथ मैत्री का भाव जोड़ना जरूरी है ।

जब तक जीवों के साथ मैत्री का संबंध नहीं होगा, तब तक परमात्मा से संबंध जोड़ना अशक्य है ।

प्रभु को प्रसन्न करने के लिए, प्रभु को जो पसंद है, वह पसंद करना पड़ेगा और प्रभु ने जो त्याग किया, वह त्याग करना पड़ेगा । परमात्मा के साथ हमारा संबंध नहीं बँधा है, क्योंकि प्रभु ने जो छोड़ा है, वह हम पाना चाहते हैं और प्रभु ने जो पाया है उससे कोई लेना–देना नहीं । परमात्मा हमें परमात्मा बनाने वाले हैं और इसलिए भगवान के पास भगवान बनने जाना है ।

प्रभू-पूजा में आध्यात्मिक रहस्य है

परमात्मा की अष्ट प्रकारी पूजा में उपयोग में आनेवाले सभी द्रव्यों में आध्यात्मिक रहस्य हैं ।

1) जिस प्रकार जल का स्वभाव मैल दूर करने का है , तो परमात्मा की जल पूजा हमारी आत्मा के तो कर्मों के मैल को दूर करती है ।

2) चंदन का स्वभाव शीतलता है, तो परमात्मा की चंदन पूजा हमारी आत्मा में भड़क रही कषायों की अग्नि को शांत करती है ।

3) पुष्प में सुगंध और सौंदर्य होता है, तो परमात्मा को अर्पण किये पुष्पों से हमारी आत्मा में रत्नत्रयी की सुगंध एवं सद्गुणों का सच्चा सौंदर्य प्राप्त होता है ।

4) धूप का स्वभाव ऊर्ध्वगमन है तो आत्मा का स्वभाव भी ऊर्ध्वगमन का है, धूप पूजा से आत्मा में सम्यक्त्व की सुगंध प्रकट होती है और आत्मा ऊर्ध्वगामी बनकर मोक्ष प्राप्त करती है ।

5) दीपक का स्वभाव अंधकार को दूर कर प्रकाश फैलाना है, दीपक पूजा से हमारी आत्मा में रहा अज्ञान का अंधकार दूर होता है, और ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है ।

6) अखंड चावल रूप अक्षत से अक्षय पद-मोक्ष पद प्राप्त होता है । जैसे चावल को उगाने से वे पुनः उगते नहीं, वैसे ही संसार के जन्म–मरण से मुक्ति प्राप्त होती है ।

7) परमात्मा की नैवेद्य पूजा से आहार की आसक्ति टूटती है ।

8) तथा फल पूजा से शाश्वत पद स्वरूप मोक्षफल प्राप्त होता है ।

जिनेश्वर परमात्मा के विरह में जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा की पूजा-भक्ति और स्तवना करके हम साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति से जन्य पुण्य का अर्जन कर सकते है ।

170 अरिहंत और सिद्ध बनने का लक्ष्य रखना है

जीवन में कोई भी व्यक्ति या वस्तु हमें परेशान नहीं करती हो, तब शांत रहना आसान है । परंतु कोई व्यक्ति हमें चाहे कितना भी हैरान–परेशान करे, हमें दुःखी करे और सुख से वंचित रखे तो भी उसके प्रति लेश मात्र भी द्वेष नहीं करना, यही शूरवीरता है ।

कुत्ते को हैरान करने पर कुत्ता भौंकता है, और हैरान नहीं करने पर शांत रहता है, जबकि वीर पुरुष को चाहे जितना हैरान किया जाय, वे हैरान करनेवाले पर जरा भी द्वेष नहीं करते और भक्ति करनेवाले पर अनुराग नहीं करते ।

भूतकाल में हो चुके समतानिधि महापुरुषों के जीवनचरित्र के पठन और मनन से हमारे जीवन में भी समताभाव आत्मसात् होता है ।

व्यक्ति जिसका भी नामस्मरण करता है, उसकी छबि, उसके जीवन की छाया, उस व्यक्ति पर अवश्य पड़ती है ।

इसलिए सुबह उठते ही हमें सबसे पहले, नवकार महामंत्र का स्मरण करना चाहिए । नवकार महामंत्र में समाविष्ट देव के रूप में अरिहंत और सिद्ध भगवान तथा गुरु के रूप में आचार्य, उपाध्याय और साधु का स्मरण किया जाता है ।

हमें जीवन में अरिहंत और सिद्ध बनने का लक्ष्य रखना है इसलिए हमें उनका स्मरण करते समय उनके जीवन का भी स्मरण करना है ।

उनके जीवन का स्मरण हमें भी सन्मार्गगामी बनने की प्रेरणा देता है ।

171 'प' वर्ग से मुक्त हैं सिद्ध भगवान

सिद्ध भगवान ''प'' वर्ग से मुक्त हैं, अतः सिद्ध गति रूप मोक्ष का एक पर्यायवाची शब्द है ''अपवर्ग''। ''प'' वर्ग में पाँच अक्षर हैं– प, फ, ब, भ और म। इन पाँच अक्षरों से शुरू होने वाले दोषों से सर्वथा मुक्ति मोक्ष में है।

''प'' अर्थात पाप ! संसार में रही आत्मा को अठारह पापस्थानक की वजह से पाप का बंध होता है, जिसके परिणाम में आत्मा को अनंत दुःखों को सहन करना पड़ता है। मोक्ष में ''पाप'' का अंत है। अतः दुःख का भी अंश नहीं है।

''फ'' अर्थात् फाँसी ! मृत्युदंड ! संसारी आत्मा के जन्म के साथ ही मृत्युदंड की सजा जुड़ी है जबकि मोक्ष में जन्म के अभाव में ''फाँसी'' रूप मृत्युदंड का अभाव है।

''ब'' अर्थात् बंधन ! संसारी आत्मा को आठ प्रकार के कर्मों का बंधन है, जबकि मोक्ष में इन बंधनों से सर्वथा मुक्ति है।

''भ'' अर्थात् भय ! हर संसारी आत्मा अनेक भयों से भयभीत है, जबकि मोक्ष में भय का नामोनिशान नहीं है।

''म'' अर्थात् मरण ! मरण द्वारा आत्मा एक भव से दूसरे भव में गमनागमन करती है जबकि मोक्ष में मरण नहीं है। वहाँ आत्मा अनंत काल तक शाश्वत सुखों में लीन रहती है।

प वर्ग से मुक्त इन सिद्ध भगवंतों की आराधना करने से अपनी आत्मा भी इन प वर्ग से मुक्त बन सकती है। प वर्ग से मुक्ति पाने के ध्येय से ही सिद्ध भगवंतों का सच्चे हृदय से ध्यान करना चाहिए।

संसार में सच्चा सुख नहीं है

मोह के अन्धत्व के कारण और वस्तु के वास्तविक गुण-दोष को नहीं समझने के कारण दुःख के प्रति तीव्र द्वेष और सुख के प्रति तीव्र राग के कारण यह आत्मा ज्यों–ज्यों प्रयत्न करती है त्यों–त्यों नवीन दुःखों को प्राप्त करती है ।

अनन्त ज्ञानी महापुरुषों ने बतलाया है कि 'इस भौतिक संसार में वास्तव में सुख नाम की कोई चीज नहीं है । इस संसार में जहाँ–जहाँ सुख दिखाई देता है, वह सुख नहीं बल्कि सुखाभास ही है, मृग–मरीचिका है ।

सुख तो आत्मा का धर्म है और वह आत्मा से ही प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु मोहान्धता के कारण जीवात्मा की दृष्टि आत्मा की ओर न होकर बहिर्जगत् की ओर होती है और वह उसी से सुख पाना चाहती है ।

मुंगफली के छिलकों को पीलने से तैल निकल सकता है ? क्या पत्तों के सिंचन से वृक्ष का सिंचन हो सकता है ? क्या जल का बिलौना करने से घी निकल सकता है ? कदापि नहीं...इसी प्रकार संसार के भौतिक पदार्थों से सुख पाने की आशा करना व्यर्थ है । जब तक आत्मा से मोह का आवरण नहीं हटता है, तब तक वह आत्मिक–सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं बन पाती है ।

दही का मंथन करने से मक्खन की प्राप्ति होती है परंतु पानी का बिलौना करे तो अपना श्रम भी व्यर्थ जाता है अतः जिसे सच्चे सुख की भूख है, उसे भौतिक सुखों के पीछे पागल नहीं बनना चाहिए ।

173

मोक्ष के लिए भवभ्रमण का खेद जरूरी है

मुक्तिमार्ग की आराधना–साधना में आगे बढ़ने के लिए जीवात्मा में मुख्य दो गुण अनिवार्य हैं ।

1) भवभ्रमण का खेद अर्थात् चार गति अथवा 84 लाख योनिरूप संसार में एक भव से दूसरे भव में भटकाव से कंटाला । इस भवभ्रमण से जिस आत्मा को कंटाला आ गया हो अर्थात् जिसे यह महसूस हो रहा हो कि मुझे अब इस संसार में नहीं भटकना है । भवभ्रमण के इस गुण को ही शास्त्रीय भाषा में 'भव निर्वेद' कहा है । सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सूचक 5 लक्षणो में 'भवनिर्वेद' आता है ।

2) अनंत सुख की अभिलाषा । संसार में जो कुछ सुख है, वह क्षणिक व नाशवंत है, दुःखमिश्रित है और भविष्य में दुःख को लानेवाला है अतः ऐसा सुख मुझे नहीं चाहिए, मुझे तो शाश्वत, स्वाधीन और अक्षय सुख ही चाहिए । ऐसा सुख संसार में नहीं बल्कि मोक्ष में ही है । उस मोक्षसुख की तीव्र अभिलाषा को ही शास्त्रीय भाषा में संवेग भाव कहा है ।

जिन आत्माओं में भवनिर्वेद और मोक्षसंवेग भाव जागृत हुआ हो, वे ही आत्माएँ अनित्य आदि बारह भावनाओं के श्रवण आदि के लिए अधिकारी हैं ।

नवपद की आराधना का फल है 'सिद्ध पद'

नवपद की आराधना का फल है 'सिद्ध पद' ।

किसान अपने भोजन के लिए चाहे कैसे भी धान्य का उपयोग करे, परंतु जब खेत में बीज बोता हैं, तब अच्छे–से–अच्छा धान्य पसंद करता है, क्योंकि फसल का आधार उसके बीज पर है ।

जहाँ उत्तम फल की अपेक्षा होती है, वहाँ बीज भी उत्तम चाहिए । वैसे ही नवपद की आराधना का उत्तम फल है, 'सिद्ध पद' । जिसके लिए अन्य पदों की आराधना उत्तम बीज के समान है ।

व्यापार चाहे सोने का हो या पत्थर का हो, छोटे गाँव में हो या, बड़े शहर में हो, छोटा हो या बडा हो, सभी व्यापार का लक्ष्य एक है 'पैसा कमाना' । वैसे ही जैनशासन की सारी आराधना का एक मात्र लक्ष्य है 'सिद्ध पद' प्राप्त करना ।

दुःख की बहुलता वाले चार गति रूप संसार में सुख का अंश भी नहीं है । जहाँ पर भी सुख माना जाता है, वह सुख भी मात्र सुखाभास ही है ।

संसार का सुख आठ दोषों से कलंकित है । वह अशाश्वत है, पुण्य के आधार पर है, पापों का बंध कराने वाला है, अधूरा है, परपीड़ाकारी है, पराधीन है, परिणाम में दुःखदायी है, क्षणविनश्वर है, एवं मात्र दुःख के प्रतिकार रुप है ।

जबकि सिद्ध भगवान का सुख, इन सारे दोषों से रहित है । सभी सिद्ध आत्माएँ शाश्वत सुख की धनी हैं, निरोगी हैं, अनंत ज्ञान की स्वामी हैं । जिस पद को उन्होंने प्राप्त किया है, उस पद को उन्हें कभी भी छोड़ना नहीं है । साथ ही कर्मों के क्षय से पाये इस सुख में कोई कमी नहीं है । ऐसे सिद्ध पद को पाने के लिए ही नवपद की आराधना है । जिसके हृदय में नवपद है, उसकी हथेली में सिद्ध पद है ।

'सद्गुरु' पारसमणि के स्पर्श समान हैं

मोक्षमार्ग में प्रगति के लिए महत्त्वपूर्ण कदम है– सद्गुरु की भक्ति ।

अंधे व्यक्ति को आँख मिल जाय, तो उसे कितना आनंद होता है ! वह व्यक्ति अपने आनंद को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पाता है । बस, उसी प्रकार का आनंद इस संसार में भ्रमण कर रही आत्मा को सद्गुरु की प्राप्ति के समय होना चाहिए ।

दुनियाँ में कोई भी व्यक्ति किसी की मदद करता है, तो उसमें उसका स्वार्थ भी हो सकता है । जबकि पूज्य गुरुदेव तो निःस्वार्थ भाव से हम पर उपकार करते हुए रत्नत्रयी की प्राप्ति कराते हैं, ऐसे उपकारी के उपकार का बदला हम किसी भी भव में चुका नहीं सकते हैं ।

उपकारी के उपकार को भूल जाने से हमें भयंकर नुकसान होता है, उसमें भी उपकारी गुरुदेव को भूल जाना, यह तो भयंकर कृतघ्नता है, जिससे आत्मा का भवभ्रमण खूब बढ़ जाता है ।

पारसमणि के स्पर्श मात्र से लोहा, सोना बन जाता है, उसी प्रकार सद्गुरु के समागम से जीवन सुवर्ण बन जाता है । इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर ऐसे बहुत से दृष्टांत हैं, जिनमें साधु के समागम से चोर, लुटेरे व व्यभिचारियों का भी जीवन परिवर्तित हो गया है । जीवन में सर्वाधिक महत्त्व सद्गुरु का है ।

ठीक ही कहां हैं–'गुरुबिन भवनिधि तरह न जाइं' गुरु के बिना भव सागर को पार उतरना शक्य नहीं है । जीवन की सुरक्षा के लिए गुरु की शरण का अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

जिनशासन के प्रभावक, आराधक और रक्षक होते हैं- 'आचार्य'

जैनशासन के गगन मंडल में जब तीर्थंकर भगवान रूपी सूर्य और केवलज्ञानी भगवान रूपी चन्द्र अस्त हो जाता है, तब जगत् में ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए आचार्य भगवंत को दीपक के समान बताया है ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् तीर्थंकर भगवान अपनी वैराग्यमयी धर्मदेशना के माध्यम से चतुर्विध श्रीसंघ के रूप में शासन की स्थापना करते हैं । तत्पश्चात् अपने शेष आयुष्य तक वे शासन की धुरा को वहन करते हैं । परंतु अपने निर्वाण के पूर्व शासन की धुरा, आचार्य को सौंपते हैं ।

तीर्थ की स्थापना के बाद तीर्थंकरों का अस्तित्व मर्यादित समय के लिए होता है, जबकि उनके द्वारा स्थापित शासन दीर्घकाल तक आचार्य भगवंत चलाते हैं ।

तीर्थंकर के विरह में जैनशासन के राजा आचार्य भगवंत हैं । विशुद्ध देशना गुण के कारण उन्हें तीर्थंकर के तुल्य कहा गया है । धर्मतत्त्व का यथार्थ स्वरूप आचार्य भगवंत ही समझाते हैं । वे हमेशा अप्रमत्त रहकर नित्य धर्म का उपदेश देते हैं ।

अपनी धर्मदेशना द्वारा आचार्य भगवंत शासन की प्रभावना करते हैं, जिससे वे प्रभावक के रुप में जाने जाते हैं । साथ ही ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रूप पंचाचार की आराधना की वजह से वे आराधक के रूप में जाने जाते हैं । इससे भी विशेष जब कभी शासन पर कोई आपत्ति आ पड़ती है, तो आचार्य भगवंत उस आपत्ति से रक्षा करते हैं, जिससे वे शासन के रक्षक के रूप में जाने जाते हैं । अतः आचार्य भगवंत शासन के प्रभावक, आराधक और रक्षक होते हैं ।

विनय गुण के भंडार हैं उपाध्याय भगवंत

शासन को चलाने में आचार्य भगवंत, राजा समान हैं, तो उपाध्याय भगवंत उनके मंत्री समान हैं ।

जैनशासन की आधार शिला स्वरूप 45 आगमों में रहे 11 अंग 12 उपांग तथा चरणसित्तरी और करणसित्तरी रूप 25 गुणों के धारक होते हैं उपाध्याय भगवंत । इसलिए 25 प्रदक्षिणा, 25 खमासमण, 25 स्वस्तिक एवं 25 लोगस्स के काउसग्ग आदि की विधि के द्वारा उपाध्याय पद की आराधना करनी चाहिए ।

उपाध्याय भगवंत विनय गुण के भंडार हैं । उनकी आराधना से हमें विनय गुण की प्राप्ति होती है । जैसे चाबी लेने या देने से बड़े मकान–बंगले आदि का क्रय-विक्रय होता है, वैसे ही ज्ञान की प्राप्ति के लिए विनय गुण चाबी के समान है ।

जीवन में विनय गुण आ जाय तो अन्य सारे गुणों की प्राप्ति सरलता से हो सकती है । अन्य गुणों को खींचने का कार्य विनय गुण रूप लोहचुंबक करता है । शिष्य के जीवन में यदि विनय गुण है तो गुरुकृपा के प्रभाव से वह आगमश्रुत का पारगामी बन सकता है ।

पत्थर के समान जड़ बुद्धि वाले शिष्य को भी उपाध्याय भगवंत ज्ञानाभ्यास के द्वारा प्राज्ञ बना सकते हैं ।

जैसे शिल्पी के हाथ में गया पत्थर छैनी–हथौड़े के घावों को सहन करता है, तो वह प्रतिमा बनकर भगवान के रूप में पूजा जाता है, वैसे ही उपाध्याय भगवंतों के अनुशासन को प्राप्त कर शिष्य अपने जीवन में मोक्षमार्ग का उत्तरोत्तर विकास कर सकता है और क्रमशः शाश्वतपद का भोक्ता भी बन सकता है ।

संसार के सभी रंगों से अलिप्त रहते हैं-साधु

नवपद के मध्य में रहा साधु पद, पंच परमेष्ठी में प्रवेश के लिए प्रवेश द्वार समान है । साधु बने बिना कोई भी आत्मा अरिहंत, सिद्ध, आचार्य या उपाध्याय पद प्राप्त नहीं कर सकती है । मरुदेवी माता आदि कुछ आत्माओं ने द्रव्य साधुता को प्राप्त नहीं की, परंतु भावसाधुता की आराधना तो की है ।

युद्धविराम के समय शांति के प्रतीक रूप श्वेत ध्वज लहराया जाता है, उसी प्रकार संसार के राग-द्वेष पर शांति के प्रतीक समान श्वेत वस्त्रों का परिधान, साधुजीवन में बताया गया है । उनके वस्त्र श्वेत हैं, परंतु उनका ध्यान करने के लिए काला रंग बताया है ।

काले रंग पर अन्य कोई रंग नहीं चढ़ता है, वैसे ही साधुजीवन में वैराग्य का रंग इतना मजबूत होता है कि उसपर संसार का अन्य रंग नहीं चढ़ता है । साधु संसार में रहते हुए भी संसार के सभी रंगों से अलिप्त रहते हैं ।

आत्मसाधना में आगे बढ़ने में पाँच इन्द्रियों के विषय और चार कषाय अवरोध करते हैं, जिनको जीतने के लिए वैराग्य एवं क्षमा गुण भंडार साधु पद की आराधना परम श्रेयकारी है ।

साधु अपने जीवन में रत्नत्रय की साधना करते हैं, तो साथ ही कष्टों और परिषहों को हँसते मुँह सहन करते हैं एवं भव्य जीवों को संसार–सागर पार करने में अपनी उंगली देते हुए सहायता करते हैं ।

27 गुणों से सुशोभित साधु पद की आराधना 27 प्रदक्षिणा, 27 खमासमण, 27 स्वस्तिक, 27 लोगस्स का काउसग्ग आदि क्रियाओं से करनी चाहिए ।

179

सहन करे, सहाय करे और साधना करे वह साधु

जैनशासन में साधु-पद की खूब महिमा है । पंच परमेष्ठी के पाँचवें पद पर साधु भगवंत प्रतिष्ठित हैं । आगे के चार परमेष्ठी साधु पद से ऊँचे पद पर विराजमान हैं, परंतु उन्हें उस पद पर पहुँचने के लिए साधु पद स्वीकार करना पड़ता है । साधु पद स्वीकार के बिना, आज तक कोई अरिहंत नहीं बने हैं ।

साधु भगवंत स्वयं मोक्षमार्ग की साधना करते हैं और भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में आगे बढ़ाने में सहायता करते हैं । साधु भगवंत कंचन और कामिनी के त्यागी होते हैं । महाव्रतों का सुदंर रूप से पालन कर, धर्मोपदेश देकर भव्य जीवों को सर्व विरति और देशविरति धर्म का पालन करवाते हैं ।

साधु भगवंत सर्वसंगों का त्याग कर निःस्पृह जीवन जीते हैं । मोक्षमार्ग में आगे बढने के लिए सर्वसंगत्याग अनिवार्य है । साधु भगवंत अपने निःस्पृह जीवन द्वारा अन्य जीवों को भी सर्वसंगत्याग में निमित्त बनते हैं । ऐसे साधु पद की आराधना, अपने जीवन में साधु पद प्राप्त करवाने में सर्वश्रेष्ठ साधन है ।

निष्काम भाव से साधु पद की आराधना करने से अपनी आत्मा में घर कर गई स्वार्थवृत्ति दूर होती है और अन्य जीवों को सहायता करने का गुण विकसित होता है ।

साधु पद की आराधना से अपने जीवन में भी सहन शक्ति बढती है ।

आत्मा की सुरक्षा रत्नत्रयी में है

देवों को भी दुर्लभ ऐसे मनुष्य भव को प्राप्त करके जिन जीवात्माओं ने रत्नत्रयी की आराधना-साधना की है, उनका यह जन्म सफल है, अन्यथा यह जीवन निष्फल है। जलचर प्राणियों से भरपूर समुद्र में वही व्यक्ति सुरक्षित है जो जहाज में बैठा है, उसी प्रकार भवसमुद्र में वही जीवात्मा सुरक्षित है, जो भवसागर पार उतारने वाले रत्नत्रयी रूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप जहाज में बैठा है।

इस जहाज का जिस जीवात्मा ने सहारा लिया है, वह निश्चय से ही भवसागर से पार उतरा है। परंतु दुःख की बात यह है कि कर्म के भार से भारी बनी आत्मा को इस जहाज का सहारा लेना पसंद नहीं आता है। अधिकांश जीव इस रत्नत्रयीरूपी जहाज से बाहर ही सुख की कल्पना करके अनंत दुःखों को प्राप्त करते हैं। रत्नत्रयरूपी जहाज से दूर रही आत्मा अपने इस लोक एवं पर लोक को भी बिगाड़ देती हैं। परम लोक मोक्ष की तो कल्पना भी उसके जीवन में नहीं होती है।

जो अपने इस लोक और परलोक को बिगाड़ देते हैं, वे जीव अधमाधम कहलाते हैं, जो मात्र इस लोक को सुधारे वे अधम कहलाते हैं, जो इस लोक और परलोक दोनों को सुधारे, वे मध्यम कहलाते हैं, जो इस लोक के सुख की इच्छा को छोडकर त्याग-तपस्या से परलोक को सुधारे, वे विमध्यम कहलाते हैं। जो मोक्ष की प्राप्ति का लक्ष्य रखते है, वे उत्तम कहलाते हैं, और जो मोक्ष के साथ सभी जीवों के मोक्ष की चिंता कर जगत् का उद्धार करे, वे उत्तमोत्तम कहलाते हैं।

रत्नत्रयी को प्राप्त कर हम भी उत्तम और उत्तमोत्तम बनने का प्रयत्न करें तो हमारा जीवन सफल हो सकता है।

नवपदों का मूल आधार है 'सम्यग्दर्शन'

वृक्ष का आधार उसकी जड़ हैं, इमारत का आधार उसकी नींव है, वैसे ही धर्म–आराधना एवं नवपदों का आधार सम्यग्दर्शन है ।

हस्ताक्षर के बिना एक करोड़ रुपये के चेक Check की कोई कीमत नहीं है, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना अन्य धर्म आराधनाओं की कोई कीमत नहीं । आत्म–साधना में विकास पाने के लिए सम्यग्दर्शन की खास जरूरत है ।

सम्यग्दर्शन यानी वीतराग परमात्मा के वचनों पर पूर्ण विश्वास । सामान्य रूप से हमारा जीवन श्वास के आधार पर चलता है, उतना ही विश्वास के आधार पर चलता है । पूरी दुनिया का आधार विश्वास है । विश्वास के बिना हमारा कोई व्यवहार नहीं चल सकता है । व्यवहार के लिए हमें दिन में न जाने कितने व्यक्तियों पर विश्वास रखना पड़ता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने के लिए वीतराग परमात्मा के वचनों पर पूर्ण विश्वास जरूरी है ।

साधु और श्रावक के व्रतों में मेरु पर्वत और राई के दाने जितना अंतर है । ज्ञानाभ्यास में भी भेद हो सकता है, परंतु सम्यग्दर्शन में कोई भेद नहीं है । वीतराग के वचनों पर जितना विश्वास साधु को चाहिए, उतना ही विश्वास श्रावक को भी चाहिए ।

साधु पद के बिना अरिहंत, सिद्ध, आचार्य या उपाध्याय पद प्राप्त नहीं हो सकता तो सम्यग्दर्शन के बिना साधु पद भी प्राप्त नहीं हो सकता । सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना नौ पूर्व तक का ज्ञानाभ्यास एवं निरतिचार चारित्र का पालन भी अज्ञान एवं कायकष्ट के समान है ।

भोग तृष्णा को शांत करे, वह सम्यग् ज्ञान

भूख को शांत करे, उसे भोजन कहते हैं, जो प्यास को शांत करे उसे पानी कहते हैं, वैसे ही जो विषयसुख की अभिलाषा को शांत करे, उसे जिनवाणी कहते हैं ।

रोग के उपचार का मुख्य ध्येय, रोग से मुक्ति है । ज्यों–ज्यों उपचार किया जाता है, त्यों–त्यों रोग से आंशिक मुक्ति का अनुभव होता है । बस, इसी प्रकार सम्यग् ज्ञान वही कहलाता है, जो हमारी विषयवासना की तृष्णा को शांत करता जाता है ।

सम्यग्ज्ञान एक अद्भुत प्रकाश है, जिससे पदार्थ का हमें सही बोध होता है । जगत् में कुछ-जानने योग्य पदार्थ हैं, वे ज्ञेय कहलाते हैं । कुछ छोड़ने योग्य पदार्थ हैं- वे हेय कहलाते हैं और जो पाने योग्य पदार्थ हैं- वे उपादेय कहलाते हैं । इन ज्ञेय, हेय और उपादेय का बोध, हमें सम्यग्ज्ञान से प्राप्त होता है ।

आज जगत् में ज्ञान बढ़ रहा है, परंतु वह मिथ्याज्ञान है । मिथ्याज्ञान के कारण दिन–प्रतिदिन बाह्य पदार्थों की भोग-पिपासा बढ़ती जा रही है । जगत् के बाह्य पदार्थों का यह विचित्र स्वभाव है कि उनका चाहे जितना भोग किया जाए, फिर भी आत्मा को तृप्ति का अनुभव नहीं होता है ।

समुद्र के खारे जल से कभी प्यास बुझती नहीं है, उसी प्रकार बाह्य पदार्थों की प्राप्ति या उनके भोग से आत्मा को कभी तृप्ति का अनुभव नहीं होता है । अतः तृप्ति का आनंद पाना है तो सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हेतु अभ्यास करना चाहिए ।

दुनिया की भोगपिपासा को बढ़ानेवाला ज्ञान, अज्ञान रूप है, उस ज्ञान से आत्मा को भयंकर नुकसान होता है । जीवन में सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए योग्य पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए ।

संचित कर्मों को रिक्त करे वह चारित्र

आठ कर्मों के संचय को चय कहते हैं, ऐसे आठ कर्मों के संचय को जो खाली करे है, उसे आगम में चारित्र कहा है ।

चक्रवर्ती जैसे अतिसमृद्ध व्यक्ति भी तृण के समान छह खंड के साम्राज्य व सुखों का त्याग कर जिस चारित्र धर्म को स्वीकार करते हैं, वह चारित्र धर्म हमारे लिए भी परम आदरणीय है ।

चारित्र धर्म की आराधना से रंक जैसा मनुष्य भी इन्द्र और राजाओं के लिए पूज्य बन जाता है, वह चारित्र धर्म संसार में रही सभी अशरण आत्माओं को शरण देने में सक्षम है ।

पंच परमेष्ठी के पाँचों पदों में चारित्र पद व्याप्त है । तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम योग्य आत्माओं को चारित्रधर्म प्रदान करते हैं, जिससे शासन की स्थापना होती है । सर्वविरति चारित्र धर्म के स्वीकार से ही शासन का प्रारंभ होता है और सर्वविरति के विच्छेद के साथ ही शासन का विच्छेद होता है ।

चारित्र धर्म के पालन में सहयोगी साधनों को उपकरण कहते हैं, जिसमें रजोहरण, मुँहपत्ती, काष्ठपात्र, कामली, कपड़ा, आसन, संथारा आदि की प्रधानता है ।

विशुद्ध भाव से की गई सर्व विरति चारित्र धर्म की आराधना आत्मा को उसी भव में मोक्ष प्रदान कर सकती है । कदाचित् मोक्ष प्राप्ति न हो तो भी आत्मा वैमानिक देव गति को प्राप्त करनी है ।

देशविरति चारित्र का पालन आत्मा को अल्प भवों में भव बंधन से मुक्त करती है ।

184

कर्मों को जलाता है तपधर्म

सोने की खान से निकला हुआ मलिन सोना आग में तपाने से शुद्ध होता है, तीव्र आग भी सोने में रहे मैल को जलाकर खाक करती है, परंतु सोने को तो और भी तेजस्वी बनाती है। उसी प्रकार कर्म से मलिन बनी आत्मा तप रूपी अग्नि के ताप से शुद्ध बनती है ।

आत्मा पर लगे निकाचित और अन्य कर्मों को भी जलाकर नष्ट करने की ताकत तप धर्म में है । परंतु तप का आचरण क्षमा पूर्वक होना चाहिए । क्षमा रहित किये हुए तप की कोई कीमत नहीं है ।

तप पद के मुख्य दो भेद हैं– बाह्य और अभ्यंतर । जो अपने उत्तर छह–छह भेदों से कुल मिलाकर बारह भेदों में विभक्त है ।

बाह्य तप अनशन, ऊणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश, और संलीनता रूप में विभक्त है, और अभ्यंतर तप–प्रायश्चित्त, विनय–वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग में विभक्त है ।

बाह्य और अभ्यंतर तप में भी अभ्यंतर तप को साध्य के रूप में माना है, जिसका साधन बाह्य तप हैं ।

नवपद के अंतिम में रहा तपपद 'गाड़ी के गार्ड' की भाँति माना जाता है ।

आग से सोने में रही मलिनता दूर होती है, उसी प्रकार तप से आत्मा में रही कर्म की मलिनता दूर होती है । कर्म मैल को दूर करने का अमोघ साधन तप धर्म है ।

शरीर में बुखार का जहर फैला हो, उसे औषध रूप जहर के सेवन से ही निकाला जाता है । पैर में चुभे काँटे को निकालने के लिए काँटा जरूरी होता है उसी प्रकार आत्मा पर लगे जन्म–जरा और मृत्यु के रोग को मिटाने के लिए समाधि मृत्यु एक मात्र उपाय है । मृत्यु से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त हो सकती है ।

मृत्यु को समाधिमय बनाने के लिए समाधिमय जीवन जरूरी है । जीवन को समाधिमय बनाने के लिए पाँच इन्द्रियों पर विजय पाना जरूरी है । पाँच इन्द्रियों में सबसे अधिक बलवान रसनेन्द्रिय है । रसनेन्द्रिय के पोषण से पाँच इन्द्रियों को पोषण मिलता है । रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने से अन्य इन्द्रियों को जीतना आसान हो जाता है ।

संसार के बाह्य वैभव और भौतिक सुखों का त्याग करने वाले भी रसनेन्द्रिय के जाल में फँस जाते हैं, क्योंकि विगइ का भोजन शरीर में विकार पैदा करता है । अतः जिसको निर्मल ब्रह्मचर्य पालन की भावना हो उसे विकार पैदा करने वाली विगइयों का त्याग अवश्य करना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य की नौ बाड में भी दो बाड भोजन संबंधी है । अतिरस प्रद आहार लेने से ब्रह्मचर्य व्रत को भी हानि होती है । रसनेन्द्रिय के पोषण से कामवासना को उत्तेजन मिलता है, अतः आत्म हित के इच्छुक को रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने के लिए अवश्य प्रयत्न करना चाहिए ।

जीभ के नियंत्रण के लिए नवपद की आराधना श्रेष्ठ उपाय है

मनुष्य के शरीर में 'जीभ' मात्र 3 इंच लंबी है, जो बाहर से दिखती नहीं है, फिर भी उसकी गुलामी अनेक अनर्थ पैदा करती है ।

शरीर में रही पाँच इन्द्रियों में चार इन्द्रियों का एक–एक कार्य हैं, जबकि मुख में रही जीभ एक होने पर भी दो कार्य करती हैं–बोलना और खाना ।

विज्ञान की प्रगति एवं शिक्षण संस्थाओं की वृद्धि के बाद डॉक्टर और वकील खूब बढ़े हैं, परंतु इस जीभ के असंयम के कारण न तो बीमारियां घटी हैं, न ही झगड़ों का अंत हुआ है ।

सामान्यतया पैसोंवालों के अधिकतम पैसे या तो डॉक्टर खाते हैं, या वकील ।

हर व्यक्ति बाल्यावस्था से बोलना और खाना जानता है, परंतु क्या बोलना, क्या नहीं बोलना, क्या खाना, क्या नहीं खाना, इसकी जानकारी पूरे जीवन भर नहीं होती है ।

स्वाद में लोलुप बना व्यक्ति, जो कुछ भी मिलता है, वह खा लेता है । परिणामस्वरूप शरीर की धातुएँ असंतुलित होने से शरीर रोग ग्रस्त होता है ।

विज्ञान चाहे जितनी प्रगति कर ले, वह ज्यों–ज्यों रोगों पर रोकथाम पाने का उपाय खोजता है, त्यों–त्यों नए–नए रोग बढ़ते जाते हैं ।

जीवन में स्वार्थवृत्ति एवं अभिमान के कारण बोलने में विवेक को भूलने से इस जगत् में झगड़े बढ़े है । झगड़ों का समाधान पाने हेतु न्यायालय बढ़े हैं और वकील भी, फिर भी झगड़ों में वृद्धि हुई है ।

इस जीभ के कारण होने वाले तांडव को रोकने के लिए नवपद की आराधना श्रेष्ठ उपाय है । जीभ पर नियंत्रण पाने के लिए आयंबिल तप एवं समता भाव की शक्ति, हमें नवपद की आराधना से प्राप्त होगी ।

तप का मुख्य फल मोक्ष है

चुम्बक में दूर रहे लोहे को खींचकर अपने निकट लाने की ताकत है, उसी प्रकार तप में दूर रहे पुण्य को खींचकर नजदीक लाने की ताकत है और उस पुण्य के फलस्वरूप सभी वांछित–मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।

शुभ संकल्प को पूर्ण करने में तप रामबाण औषध समान है । तप में दुनिया के प्रत्येक सुख और यावत् मोक्ष का सुख देने का सामर्थ्य है । परन्तु तप के फलस्वरूप संसार के सुखों की इच्छा करना, हानिकर ही है ।

सम्भूति मुनि ने अपने तप के फलस्वरूप चक्रवर्ती पद की याचना की । इस याचना (निदान) से उसे चक्रवर्ती का पद तो मिल गया किन्तु अन्त में उसे सातवीं नरक में जाना पड़ा ।

जो गेहूँ बोयेगा, उसके साथ घास–चारा उगने ही वाला है । गेहूँ के लिए ही गेहूँ बोये जाते हैं, घास–चारे के लिए नहीं । इसी प्रकार मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से ही सम्यग् तप धर्म का आचरण करने का है । मोक्ष के उद्देश्य से की गई साधना के फलस्वरूप सांसारिक भोग–सुख मिलेंगे ही । सांसारिक सुख तप का आनुषंगिक फल है, तप का मुख्य फल तो मोक्ष है । तप में समस्त वांछाओं को पूर्ण करने का सामर्थ्य रहा हुआ है । किन्तु हमें वांछाएँ ऐसी रखनी चाहिए जो हमें मोक्षमार्ग में आगे बढ़ानेवाली हों ।

इसी कारण प्रार्थना सूत्र में भी प्रभु से वे ही प्रार्थनाएं की गई हैं, जो मोक्ष मार्ग में सहायक हो । मोक्ष मार्ग में बाधक इस लोक या परलोक के सुख की प्रार्थना करना मुर्खता ही है ।

188 तप धर्म का वास्तविक फल कर्म-निर्जरा है

साधुजीवन में पुण्यबंध गौण है । साधुजीवन निर्जराप्रधान है अर्थात् जिन–जिन शुभक्रियाओं से पुण्य–कर्म का बंध होता है, ऐसी सभी क्रियाएँ साधुजीवन में निषिद्ध हैं । बाह्य वस्तु का दान देने से, साधर्मिक की भक्ति करने से, परमात्मा की द्रव्यपूजा आदि करने से पुण्य का बंध होता है ।

नए पुण्यकर्म का बंध न हो और पूर्व में उपार्जित शुभ–अशुभ कर्मों का क्षय हो, इसी को लक्ष्य में रखकर त्याग, तप, जाप, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान आदि की क्रियाएँ साधुजीवन में होती हैं । इस अपेक्षा से कह सकते हैं कि साधुजीवन तप–प्रधान है ।

तप के दो प्रकार हैं–'बाह्यतप और अभ्यंतर तप । बाह्य तप में खाने–पीने की सामग्री का आंशिक अथवा सर्वथा त्याग होता है । बाह्य तप में शारीरिक कष्ट है । बाह्य तप का सीधा प्रभाव काया पर पड़ता है । बाह्य तप से काया कृश बनती है ।

रसनेन्द्रिय पर विजय पाने के लिए, कामवासना पर नियंत्रण पाने के लिए और काया की ममता को दूर करने के लिए बाह्यतप जरूरी है । बाह्यतप का मुख्य उद्देश्य अभ्यंतर तप को पुष्ट करना है ।

जिनाज्ञानुसार तप धर्म की आराधना करने से आत्मा अल्प भवों में ही कर्म के बंधन से मुक्त हो जाती है ।

पुण्योदय से प्राप्त मानव जन्म में तप धर्म की आराधना कर इस जीवन को सफल व सार्थक बनाना चाहिए ।

कर्मों की निर्जरा के लिए तप जरूरी है

संपूर्ण निष्पाप जीवन जीए बिना आत्मा कर्म से मुक्त नहीं हो सकती है । संपूर्ण पापमुक्त जीवन जीने के लिए साधुधर्म । (पाँच महाव्रतों की प्रतिज्ञा) के स्वीकार बिना अन्य कोई विकल्प नहीं है ।

तप का फल समता है । यदि कोई तपस्वी दीर्घकालीन तप करने के बाद भी उतना ही तपता है, उतना ही क्रोध करता है तो वास्तव में ज्ञानियों की दृष्टि में उसने तप का आसेवन किया ही नहीं है ।

बाह्यतप की साधना, अभ्यंतर तप की पुष्टि के लिए है । अभ्यंतर तप की पुष्टि में ही बाह्य तप की सफलता है । कषायों की हानि बिना अभ्यंतर तप का सेवन शक्य नहीं है ।

तप के सेवन में समतादि अभ्यंतर गुणों का अभ्यास करना है । इस प्रकार देह–ममत्व–त्याग, इन्द्रियजय और कषायों की हानि, इन तीनों की पूर्ति तप के सेवन से होती है ।

तपस्वी को चाहिए कि वह इन तीनों को लक्ष्य में रखकर अपनी शक्ति के अनुसार तप का आचरण करे । यदि अपनी शक्ति के अनुसार तथा लक्ष्य को ध्यान में रखकर निरन्तर तपधर्म का आसेवन किया जाय तो आत्मा अवश्य ही शुभाशुभकर्मों से मुक्त बनकर परमपद प्राप्त कर सकती है ।

तप करने के बाद यदि किसी को ज्यादा गुस्सा आता हो तो मानना पडेगा कि उसे तप का पाचन नहीं हुआ हैं, बल्कि तप का अजीर्ण हुआ है । क्रोध तो तप का अजीर्ण है, उससे सदैव बचना चाहिए ।

तप से कठिन कर्मों का भी नाश होता है

कागज को फाड़ने में कोई विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती। सूत की कच्ची रस्सी को तोड़ने में थोडासा प्रयत्न करना पड़ता है। वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी के प्रहार करने पड़ते हैं, और पर्वत को फोड़ने के लिए भयंकर विस्फोटक पदार्थ की जरूरत रहती है।

उसी प्रकार आत्मा पर लगे हुए कर्म भी स्पृष्ट, बद्ध, निधत्त और निकाचित रूप चार प्रकार के होते हैं।

स्पृष्ट कर्म को तोड़ने में कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। बद्ध कर्म को तोड़ने में थोडा प्रयत्न करना पडता है। निधत्त कर्मों का क्षय करने में थोड़ा विशेष प्रयत्न करना पड़ता है जबकि निकाचित कर्म का क्षय करने में विशेष प्रयत्नरूप तप धर्म की आराधना करनी पड़ती है।

तप से कठिन कर्मों का भी नाश हो जाता है अतः यथाशक्ति तप धर्म की आराधना करनी चाहिए। तप करने की हमारी शक्ति मर्यादित है। तप कराने का सुकृत थोडा ज्यादा कर सकते हैं, परंतु उसका भी कहीं–न–कहीं अंत आ जाता है जबकि अनुमोदना का क्षेत्र सबसे बड़ा है।

इस दुनिया में होने वाले सभी सुकृतों में हम अनुमोदना द्वारा भागीदार बन सकते हैं। तप की अनुमोदना से हमारे जीवन में रही स्वाद की गुलामी और तप के अंतरायों का नाश होता है।

आज तप की शक्ति न हो तो भी अनुमोदना करके तप की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अतः अनुमोदना के अवसर पर हमें उसके लिए अधिक प्रयत्न करना चाहिए।

आयंबिल से होता है रसना-विजय

जीभ में हड्डी नहीं है, फिर भी बोलने व खाने में अंकुश न हो तो भयंकर अनर्थों को जन्म दे देती है ।

जीभ पर अंकुश लाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है–आयंबिल तप । आयंबिल में रसयुक्त भोजन का त्याग ही नहीं है किन्तु नीरस भोजन का सेवन भी है । इसी कारण, एक अपेक्षा से उपवास के बजाय आयंबिल करना कठिन गिना जाता है ।

उपवास में सभी प्रकार के आहार का त्याग है, जबकि आयंबिल में स्वादयुक्त भोजन का त्याग कर रसहीन भोजन का सेवन भी है अतः दोनों ओर से रसनेन्द्रिय के ऊपर प्रहार होता है ।

उपवास का सेवन निरंतर नहीं किया जा सकता है, जबकि आयंबिल तप का आचरण जीवन पर्यंत किया जा सकता है । आयंबिल का भोजन सात्त्विक होता है । शरीर के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक शक्तिदायक तत्त्व आयंबिल के भोजन से प्राप्त हो सकते है, इस कारण आयंबिल के तपस्वी दीर्घकाल तक इस तप का आचरण करते हुए भी अपने जीवन में स्फूर्ति आदि का अनुभव कर सकते हैं ।

रस रहित आहार से ब्रह्मचर्य पालन में भी बल मिलता है ।

रस युक्त आहार इन्द्रियों को भी उत्तेजित करता है । ठीक ही कहा– भोजन सरस तो भजन निरस ।
भोजन निरस तो भजन सरस ।।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर मरुधररत्न, पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**
द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 225 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	33.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	34.	अमृत रस का प्याला	300/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	35.	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	36.	ध्यान साधना	40/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	37.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
6.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	38.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	39.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
8.	विविध-तपमाला	100/-	40.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
9.	विवेकी बनो	90/-	41.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	220/-
10.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	42.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
11.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-	43.	दंडक सूत्र	50/-
12.	श्रमण-क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	44.	जीव विचार विवेचन	60/-
13.	प्रवचन-वर्षा	60/-	45.	नव तत्त्व-विवेचन	60/-
14.	मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-	46.	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
15.	आओ श्रावक बनें !	25/-	47.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
16.	व्यसन-मुक्ति	100/-	48.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
17.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	49.	गणधर-संवाद	80/-
18.	शंका-समाधान (भाग-4)	60/-	50.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
19.	जैन-महाभारत	130/-	51.	नवपद आराधना	80/-
20.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	52.	पहला कर्मग्रंथ	100/-
21.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	53.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
22.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	54.	पाँचवाँ कर्मग्रंथ	100/-
23.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	55.	संस्मरण	50/-
24.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	56.	भव आलोचना	10/-
25.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	57.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
26.	सुखी जीवन के Mile-Stone	100/-	58.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
27.	समाधि मृत्यु	80/-	59.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
28.	The Way of Metaphysical Life	60/-	60.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
29.	Pearls of Preaching	60/-	61.	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
30.	New Message for a New Day	600/-	62.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	60/-
31.	Celibacy	70/-	63.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	140/-
32.	Panch Pratikraman Sootra	60/-			

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299